CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3455

वीतराग विज्ञान जैन ग्रन्थमाला पुष्प ४

स्व० शाह पं० दीपचन्दजी काशलीवाल
कृत

आत्मावलोकन

: भाषा-परिवर्तनकार :
श्री पं० राजकिशोर जैन, बड़ौत

: प्रकाशक :
श्री वीतराग विज्ञान जैन ग्रन्थमाला
श्री सुमतिचन्द्र जैन, खण्डवा (म. प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ग संख्या.................. प्राप्ति-संख्या........................

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम आत्मावलोकन

लेखक पं० दीपचन्द जी कासलीवाल

लौटानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्र. दुलीचन्द जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं. १२ ~~३४५६~~ ३४५५

स्व० शाह पं० दीपचन्दजी काशलीवाल
कृत

आत्मावलोकन

: भाषा-परिवर्तनकार :
श्री पं० राजकिशोर जैन, बड़ौत

: प्रकाशक :
ब्र० दुलीचन्द जैन ग्रन्थमाला
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमावृत्ति वीर नि. सं. २५०१

प्रतियाँ : २१००

इस ग्रन्थका मूल्य कम करनेको प्राप्त हुई
आर्थिक सहाय

१०१-००	श्री विमलकुमारजी पाटनी	बम्बई
१०१-००	,, नरेन्द्रकुमार जैन	,,
१०१-००	,, श्रीराम जैन	दिल्ली-५
५१-००	स्व. सन्तोषकुमार जैन	खण्डवा
———	(हस्ते—श्री जतीशचन्द्र जैन)	
३५४-००		

卐

मूल्य : ३=५०

: मुद्रक :

मगनलाल जैन

अजित मुद्रणालय, सोनगढ (सौराष्ट्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय निवेदन

आजसे २५ वर्ष पूर्व श्री पाटनी ग्रन्थमाला द्वारा यह ग्रन्थ १५०० प्रति छपी थी; आज कई वर्षोंसे अप्राप्य होनेसे जिज्ञासु गणोंकी मांग चालू है अतः २१०० प्रति छपवाई है। यह ग्रन्थ बड़ौत निवासी पं. राजकिशोरजीसे आधुनिक भाषामें परिवर्तन कराया है किन्तु मूल कर्ताके अभिप्रायको जरा भी क्षति पहुंचे ऐसी भूल न होने पाये इसलिये पूरी सावधानी रखी है। श्री पं० राजकिशोरजी जैन बडौतवालोंने अच्छी सूझ-बूझ सहित भाषापरिवर्तनका काम कर दिया है अतः हम उनके आभारी हैं।

अजित मुद्रणालयके मालिक मगनलालजी जैनने उत्तम प्रकार प्रूफ देखकर छाप दिया अत: उनके भी हम आभारी हैं।

५०० प्रति खंडवावाले श्री सुमतिचंदजी जैन द्वारा श्री वीतराग-विज्ञान ग्रन्थमालाने प्रथम ही ग्राहक बनकर शीघ्र छापनेका अनुरोध किया था उनके भी हम आभारी हैं।

जिन जिन भाइयोंने इस प्रकाशनमें ज्ञानदानमें सहायता दी है वह रकम इस ग्रन्थका मूल्य कम करनेमें लगाई है; अलग उल्लेख भी किया है।

अन्तमें यह शास्त्र सर्वोत्तम मार्ग निर्देश करनेवाला होनेसे सभीका श्रम सार्थक हो ऐसा अपना पवित्र जीवन बनाना हरेकका कर्तव्य है।

(श्री भगवान महावीर २५००वां निर्वाण महोत्सव,
महा सुद १)

—हिम्मतलाल छोटालाल जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
विषय प्रवेश	(१ से १६)
१ देवाधिकार (मंगलाचरण)	१
२ गुरु अधिकार	५
३ धर्माधिकार	७
४ विधिवाद	८
५ चरितानुवाद	१०
६ यथास्थितिवाद	११
७ ज्ञेयवाद	१३
८ हेय व्याख्या	१४
९ उपादेय स्वरूप व्याख्यान	१५
१० व्यवहार वर्णन	१७
११ निश्चय लक्षण	२१
१२ साक्षात् धर्म	२६
१३ बहिःधर्म	२८
१४ मिश्रधर्म कथन	३०
विकार उत्पत्ति	४२
चित्‌विकार वर्णन	४३
१५ जीवाधिकार वर्णन	५४
१६ अजीवाधिकार वर्णन	५५
१७ कर्त्ता-कर्म-क्रिया अधिकार	५८
१८ पुण्यपापाधिकार	६१
१९ आस्रवाधिकार	६१
२० बंधाधिकार	६३
२१ संवराधिकार	६३

विषय	पृष्ठ
२२ संवरपूर्वक निर्जराधिकार	६४
२३ मोक्षाधिकार	"
२४ कुनयाधिकार	६५
२५ सम्यग्भावस्य यथाऽस्ति तथाऽवलोकनाधिकार	६८
२६ साधक-साध्यभाव	८१
साधक-साध्य भावना उदाहरण	८२
२७ मोक्षमार्ग अधिकार	८४
२८ अन्तर्व्यवस्था कथन	८९
२९ सम्यग्दृष्टि सामान्य-विशेषाधिकार	९१
३० सम्यक्त्व गुणका कुछ विवरण	१०१
३१ संसार कर्तृत्व अधिकार	११२
३२ अथ अनुभव विवरण	११८
निर्विकल्पका काल-गुणस्थान	१२७
३३ अथ अन्यत् किंचित् कथ्यते...	१२९
अथ छद्मस्थिनां परमात्मप्राप्ते सकलारीतिः	१४१
अथ जीवभाव वचनिका	१४२
आत्मावलोकन स्तोत्र	१४७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-प्रवेश

इस ग्रन्थका नाम आत्मावलोकन है। इसका उद्देश्य है आत्माका अवलोकन कराना, इसलिये सबसे पहिले यह जानना जरूरी है कि आत्मा क्या है, वह कहाँ किन अवस्थाओंमें पाया जाता है, और उसका यथार्थ स्वरूप क्या है?

विश्वकी व्यवस्था

आत्मा यानी जीव एक द्रव्य (वस्तु) है उस ही प्रकार पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी पाँच वस्तुएं यानी द्रव्य हैं; हरएक द्रव्यमें अनन्त शक्तियाँ (गुण) हैं और हरएक शक्तिकी स्वतः समय समय पर अवस्था बदलती रहती है। जाति अपेक्षा इन छहों द्रव्यों (वस्तुओं)के समुदायका नाम ही लोक यानी विश्व है। वस्तु अनादि अनंत अविनाशी हैं, इसलिये लोक भी अनादि अनंत और अविनाशी है। अपनी अवस्थाओंको स्वतः पलटते पलटते द्रव्य अनादि अनंत बना रहता है, इसलिये विश्व भी अपनी नई-नई हालतोंमें बदलते हुवे अनादि अनन्त कायम रहता है। जबकि द्रव्य किसीका बनाया हुआ नहीं है तो इस विश्वका भी कोई बनानेवाला नहीं हो सकता।

सत्तापना वस्तुका लक्षण

सत्तापना यानी अविनाशीपना ही द्रव्य (वस्तु)का लक्षण आचार्योंने किया है जैसे "सत् द्रव्य लक्षणं" और अपनी अवस्थाओं-को पलटते पलटते ही द्रव्य (वस्तु) अनादि अनन्त कायम रह सकता है इसलिये सत्ताकी सिद्धिके लिये आचार्योंने "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्" कहा है यानी द्रव्य (वस्तु) हरएक समय अपनी सत्ता कायम टिकाये रखते हुवे भी अपनी पूर्व अवस्था (पर्याय)का व्यय करके नवीन अवस्था (पर्याय)को प्राप्त करता रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्योंने "गुणपर्ययवद्द्रव्यम्" के द्वारा यह समझाया है कि गुण (शक्ति) पर्याय (अवस्था) सहित ही वस्तु होती है अर्थात् शक्ति और अवस्थाओंके विना वस्तुका अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

पर्याय भी निश्चयनयसे स्वयं सत्, अहेतुक है

उपरोक्त कारणोंसे यह सिद्ध हुआ कि संसारमें हर एक वस्तु अनंत गुणों (शक्तियों)को धारण करती है और हरएक शक्ति समय समय अपनी अवस्थाओंको पलटती २ अनादि अनंत वस्तुको कायम रखती है। कोई समय भी ऐसा नहीं हो सकता कि अवस्था पलटे बिना रह जावे तथा कभी ऐसा भी नहीं हो सकता कि एक समयमें दो अवस्थाएं हो जावें क्योंकि द्रव्यकी जो अवस्था पलटती है वो स्वयं पलटती है इसलिये निश्चयनयसे हर एक पर्याय स्वयं सत् अहेतुक है और कारण अपेक्षासे पर्याय स्वयं ही स्वयंका कारण है इसलिये इसके पलटनेमें कोई अन्य द्रव्यके आधार आदिकी जरूरत नहीं होती, तथा जिसमें जिस समय जिस प्रकार-रूप होनेकी योग्यता है उसको कोई रोक भी नहीं सकता, क्योंकि ऐसा नियम है कि "असत्की उत्पत्ति नहीं होती और सत्का कभी नाश नहीं होता" इसलिये जिस समय वस्तुकी जिस शक्तिकी जो अवस्था होने वाली है उस समय वह अवस्था ही होवेगी एक समय भी आगे पीछे नहीं हो सकती और उसकी जगह कोई अन्य अवस्था भी नहीं हो सकती तथा उस अवस्थाको कोई रोकना चाहे तो रुक भी नहीं सकती, अन्य रूप भी नहीं हो सकती; दूसरी वस्तुका, दूसरी शक्तिका अथवा दूसरी अवस्थाका भी आधार नहीं रखती, इस ही प्रकार जो अवस्था नहीं होने वाली है वह हो ही नहीं सकती, कारण असत्की उत्पत्ति त्रिकालमें भी संभव नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर एक द्रव्य स्वचतुष्टयमें अस्ति, परचतुष्टयसे नास्ति स्वरूप ही है।

हर एक द्रव्यकी स्वचतुष्टयमें अस्ति (मौजूदापना) है और परचतुष्टयमें नास्ति है इसीका नाम अनेकांत[1] और इस कथन शैलीका ही नाम स्याद्वाद है, आत्मा स्वचतुष्टयमें भी है और परचतुष्टयमें भी है यानी कोई द्रव्यका कार्य कभी आपसे हो तथा कभी परके द्वारा भी हो जावे इसका नाम अनेकांत अथवा स्याद्वाद नहीं है। जैसे आत्मद्रव्यका, स्वद्रव्य = आत्मवस्तु, स्वक्षेत्र = आत्माके असंख्यप्रदेश, स्वकाल = आत्मामें अनंत गुणोंकी वर्तमान समय समयमें होने वाला परिणमन यानी पर्यायें, स्वभाव = आत्माकी ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि अनंत स्वाभाविक शक्तियाँ; इसही प्रकार आत्माकी अपेक्षासे कर्म तथा नो कर्मादि पुद्गल—परद्रव्य हैं, पुद्गलके प्रदेश उसका स्वक्षेत्र जो आत्माके लिये पर क्षेत्र है, पुद्गलके स्वगुणोंकी समय समय वर्तने वाली पर्यायें उसका स्वकाल आत्माके लिये पर काल है, तथा पुद्गलकी स्पर्श, रस, गंधादि अनन्त स्वाभाविक शक्तियाँ पुद्गलका स्वभाव आत्माके लिये परभाव है, इस प्रकार आत्मद्रव्यकी स्वचतुष्टयमें अस्ति लेकिन पर चतुष्टयमें त्रिकाल नास्ति है यानी आत्मद्रव्य कभी भी कर्मादि पुद्गलद्रव्यके साथ मिल नहीं सकता तथा परस्पर एक दूसरेका कुछ भी फेरफार नहीं कर सकते, उस ही प्रकार पुद्गल कर्मकी भी कोइ भी पर्याय, आत्माकी कोई भी पर्यायमें कुछभी नहीं कर सकती।

---

१. समयसारके परिशिष्टके प्रारम्भमें देखिये—

अमृतचन्द्राचार्य्य

यदेव नित्य तदेवानित्यमित्येकवस्तुवस्तुत्वनिष्पादकं परस्परविरुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकारसे सब द्रव्य अपने स्वचतुष्टयमें ही अनादि अनंत परिणमन करते रहते हैं और अपने परिणमनके लिये किसीको कोई दूसरेका आधार सहारा आदि नहीं है तथा किसी क्षेत्र काल संयोग की बाट नहीं देखनी पड़ती, सबका अपनी अपना स्वतंत्रतासे परिणमन होता ही रहता है।

सर्वज्ञपना क्या है ?

सच्चे देवका लक्षण सर्वज्ञ वीतरागपना है सर्वज्ञ किसे कहते हैं कि जो अपने स्वभावमें रहते हुवे भी विश्वके समस्त द्रव्यों यानी वस्तुओंमें हर एक की जिस-जिस समयमें, जिस-जिस क्षेत्रमें, जिस प्रकारसे, जो-जो अवस्था होनेवाली है, हो रही है अथवा हो चुकी है उन सबको प्रत्यक्ष पूर्णरूपसे जैसीकी तैसी युगपत् जानते हैं। वीतरागीका ज्ञान पूर्ण हो चुका है, इसलिये किंचित् भी न्यून नहीं जानता तथा वस्तुमें जो होनेवाला है सो सब जान लिया अतः अधिक जाननेको कुछ रह नहीं जाता, इसलिये सारांश यह हुआ कि "जिस वस्तुकी जैसी अवस्था जिस समय होनेवाली है, वैसी ही सर्वज्ञके ज्ञानमें आई है, और वैसी ही होवेगी ही"।

ऐसी श्रद्धासे ही वस्तुस्वभावका तथा सर्वज्ञका यथार्थ निर्णय होता है और "पर द्रव्यका मैं कुछ भी नहीं कर सकता" ऐसी अकर्तृत्वपनेकी भावना जाग्रत होकर अपने ज्ञायक स्वभावकी रुचि

शक्तिद्वयप्रकाशनमनेकांतः

जयसेनाचार्य्य

अनेकांत इति कोऽर्थः ? इति चेत् एकवस्तुनि वस्तुत्वनिष्पादकं अस्तित्व नास्तित्वद्वयादिस्वरूपंपरस्परविरुद्धसापेक्षशक्तिद्वयं यत्तस्य प्रतिपादने स्यादनेकांतो भण्यते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जम जाती है यदि इससे विपरीत परद्रव्यमें कर्त्तृत्वपनेकी रुचि हो तो उसको सर्वज्ञ और वस्तुस्वभावकी प्रतीति नहीं होती। यही स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षामें भी कहा है कि—जो जिस जीवके जिस देश विषैं जिस काल विषैं जिस विधानकरि जन्म तथा मरण उपलक्षणतैं दुःख, सुख, रोग, दारिद्र आदि सर्वज्ञ देवने जाण्या है जो ऐसे ही नियम करि होयगा सो ही तिस प्राणीके तिसही देशमें तिसही कालमें तिसही विधान करि नियमतैं होय है, ताकूं इन्द्र तथा जिनेन्द्र तीर्थंकर देव कोई भी निवारि नाहीं सकै है। आत्मावलोकन पत्र २४ में भी ऐसा ही कहा है।

विकारकी उत्पत्ति कैसे तथा निमित्त-नैमित्तिक संबंध क्या है

उपरोक्त सिद्धान्तोंसे यह निर्णय होता है कि आत्माका जिस समय जिस प्रकारके पुरुषार्थ रूप स्वकाल (योग्यता) होती है उसी प्रकार स्वयं परिणमन करता है, लेकिन इतना जरूर है कि आत्मा जब विभावरूप परिणमन करता है उस समय स्वसे च्युत होकर परद्रव्यका आश्रयपना जरूर स्वीकारता है।

जबतक स्वद्रव्यका आश्रय रखता है तबतक विकाररूप परिणमन हो ही नहीं सकता और जिस समय विकारी परिणमन है उस समय नियमसे पर वस्तुका आश्रयपना भी है। यथार्थ वस्तुदृष्टिसे देखो तो किसी वस्तुका किसीके साथ आश्रयपना नहीं है, कारण परद्रव्यकी पर्याय भी तो अपने स्वकालकी योग्यताके अनुसार परिणमन करती हुई स्वतः उपस्थित हुई है। वह कुछ आत्मद्रव्यको परिणमन करानेके लिये नहीं आई है, और इसी प्रकार आत्मद्रव्यकी भी वह अवस्था इस पर द्रव्यका कुछ करने-भोगनेके लिये नहीं आई है बल्कि वह भी अपने स्वकाल (योग्यता)से आई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे कि आत्माका चारित्रगुण जिस समय अपने स्वकालके अनुसार क्रोधरूप[1] परिणमन करता है उस समय उसके अनुकूल ही द्रव्यकर्म अपने परिवर्तन कालके अनुसार स्वयं उदयरूप उपस्थित होते हैं और बाह्य नोकर्म भी उस ही प्रकारके अपने परिवर्तन कालसे स्वयं उपस्थित होते हैं और उस समय जीव स्वाश्रयपनेको भूलकर पराश्रित परिणाम करता है और उन सबका आपसमें एक-दूसरेसे उस समय यानी उस पर्याय मात्रके लिये निमित्त-नैमित्तिक स्वतंत्ररूप संबंध कहा जाता है, यदि कोई उसीमें निमित्तकी उपस्थितिसे विलक्षणता माने तो कर्तृत्व और दो द्रव्योंकी एकत्व-बुद्धिका दोष आता है।

न तो उपादानरूप स्वद्रव्यकी पर्यायने निमित्तरूप परद्रव्यकी पर्यायमें कुछ भी अतिशय प्रेरणा प्रभाव आदि किया है और उसी प्रकार न निमित्तरूप परद्रव्यकी पर्याय ने उपादानकी पर्यायमें कुछ भी किया है, जैसे कि सूर्योदय होते ही बहुधा प्राणी जाग्रत होकर अपने योग्य प्रवृत्ति करने लग जाते हैं और सूर्यास्त होने पर विश्राम लेने लग जाते हैं, कुछ सूर्य उन प्राणियोंको उपरोक्त कार्यके लिये प्रेरणा नहीं करता ?

ऐसा ही श्री पूज्यपादस्वामीने इष्टोपदेशकी गाथा ३४ में भी कहा है कि "जो सत् कल्याणका वांछक है, वह आप ही मोक्ष सुखका बतलानेवाला तथा मोक्ष सुखके उपायोंमें अपने आपको प्रवर्तन करानेवाला है इसलिये अपना (आत्माका) गुरु आप ही (आत्मा ही) है"। इस पर शिष्य ने आक्षेप सहित प्रश्न किया कि "अगर आत्मा ही आत्माका गुरु है तो गुरु-शिष्यके उपकार,

---

१. निश्चयमें अपने ज्ञायक स्वभावकी अरुचिका नाम ही क्रोध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेवा आदि व्यर्थ ठहरेंगे" उसको आचार्य गाथा ३५ से जवाब देते हैं कि—

"नाज्ञो विज्ञत्व मायाति विज्ञोनाज्ञत्व मृच्छति ।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेधर्मास्तिकायवत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—अज्ञानी किसी द्वारा ज्ञानी नहीं हो सकता, तथा ज्ञानी किसीके द्वारा अज्ञानी नहीं किया जा सकता, अन्य सब कोई तो गति (गमन)में धर्मास्तिकायके समान निमित्त मात्र हैं अर्थात् जब जीव और पुद्गल स्वयं गति करे उस समय धर्मास्तिकायको निमित्तमात्र कारण कहा जाता है उसीप्रकार शिष्य स्वयं अपनी योग्यतासे ज्ञानी होता है तो उस समय गुरुको निमित्त मात्र कहा जाता है उसीप्रकार जीव जिस समय मिथ्यात्व रागादिरूप परिणमता है उस समय द्रव्यकर्म और नोकर्म (कुदेवादिको) आदिको निमित्तमात्र कहा जाता है जो कि उपचार कारण है। उपादान स्वयं अपनी योग्यतासे जिस समय कार्यरूप परिणमता है तो ही उपस्थित क्षेत्र, काल, संयोग आदिमें निमित्त कारणपनेका उपचार किया जाता है अन्यथा निमित्त किसका ?

निमित्तको जुटाना नहीं पड़ता

जिस समय उपादान कार्य परिणत होता है उस समय योग्य निमित्त अपनी स्वतंत्रतासे स्वयं उपस्थित होते हैं।

ऐसा नहीं हो सकता कि किसी भी द्रव्यकी जिस समय जैसा परिणम होनेकी योग्यता है उस समय उसके अनुकूल निमित्त विश्वमें नहीं होवे और उसका उस रूप परिणमन होना रुक जावे, अथवा किसी क्षेत्र, काल, संयोग की बाट देखनी पड़े अथवा निमित्तको जुटाना पड़े क्योंकि ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका स्वरूप नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर एक द्रव्यकी एक समयकी पर्यायके परिणमनमें छहों द्रव्योंकी वर्तमान पर्यायोंका कोईके साथ भावरूप कोईके साथ अभावरूप निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है, यही सहज स्वतंत्र विश्वकी व्यवस्था है, श्री स्वामी अमृतचन्द्राचार्यने भी समयसार गाथा तीनकी टीकामें ऐसा ही कहा है कि—

"इसलिये सब ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीव-द्रव्यस्वरूप लोकमें जो कुछ जितने पदार्थ हैं वे सभी अपने द्रव्यमें अन्तर्मग्न हुए अपने अनन्त धर्मोंको चूंवते-स्पर्शते हैं तो भी आपसमें एक दूसरेको नहीं स्पर्श करते। और अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाह-रूप तिष्ठ रहे हैं तो भी सदाकाल निश्चय कर अपने स्वरूपसे नहीं चिगते, इसीलिये विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य - इन दोनों हेतुओंसे हमेशा सब विश्वका उपकार करते हैं।" निमित्त अपने परिवर्तन कालसे जिस समय जो आनेवाला है वही आता है, कुछ इसके लानेसे नहीं आता। अज्ञानी व्यर्थका मिथ्या अभिमान करता है कि मैंने पर द्रव्यमें कुछ कार्य कर दिया यानी पुरुषार्थ करके निमित्तको जुटाया, जैसे किसी बैलगाड़ीके नीचे कोई कुत्ता चलने लगा और वह मानने लगा कि इस गाड़ीको मैं ही चला रहा हूँ तो यह उसका मिथ्या अभिमान है।

यहाँ कोई कहे कि सर्वत्र उपादानकी मुख्यतासे ही कार्य होता है और निमित्तकी मुख्यतासे कभी नहीं होता ऐसा माना जावे तो एकांत हो जाता है।

उसका समाधान यह है कि—श्री स्वामी अमृतचन्द्राचार्यने अनेकान्त[१]का स्वरूप ऐसा बतलाया है कि "एक वस्तुमें वस्तुपने की निपजानेवाली, अस्तिनास्तिरूप दो विरुद्ध शक्तियोंका प्रकाशित

१. पृष्ठ ३ के टिप्पणमें देखिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होना सो अनेकांत है" इसलिये "हरएक वस्तुमें उपादानकी मुख्यतासे कार्य होता है निमित्तकी मुख्यतासे नहीं" इसहीमें अनेकांतकी सिद्धि होती है, अन्यथा माननेसे दो विरुद्ध शक्तियोंका प्रकाशन नहीं होकर एकांत अस्ति आनेसे, निमित्तकी मुख्यतासे कभी भी कार्य होनेकी मान्यतामें दो द्रव्यकी एकतारूप एकांत ही होता है तथा ऐसी मान्यतामें किसी भी समय कोई अवस्थामें भी जीवकी स्वतंत्रता नहीं रहती और श्रद्धामें हमेशा भय बना रहता है कि प्रतिकूल कर्मका संयोग आ जावेगा तो? ऐसे भयवान् पुरुषार्थवाला, स्वतंत्र परिपूर्ण निरपेक्ष ज्ञायक स्वभावकी श्रद्धा करनेका बल कहांसे लावेगा।

इससे सारांश यह निकला कि कोई किसी द्रव्यके परिणमनका व्यवहारसे भी कर्ता-हर्ता नहीं है मात्र व्यवहारसे ही निमित्त-नैमित्तिक संबन्ध कहा जाता है।

परमें कर्तृत्वकी मान्यता ही रागादिको पैदा करती है

उपरोक्त सिद्धान्तसे यह निर्णय हुवा कि "मेरा आत्मा अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभावको छोड़कर स्त्री-पुत्रादि समस्त अन्य जीव तथा धन, मकान, जेवर, जवाहरात, देश, गाँव आदि समस्त परद्रव्यकी किसी भी पर्यायको नहीं कर सकता।" जब मैं किसीको भी नहीं कर सकता और नहीं रोक सकता तथा परद्रव्य भी मेरा कुछ भी नहीं कर सकते तथा रोक सकते ऐसी श्रद्धा होगई तो फिर "मैं परद्रव्यको ऐसा कर दूं, वैसा कर दूं" इत्यादि विकल्प करना आत्माका कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि ऐसा करनेका अभिप्राय मिथ्या है। जैसे कोई व्यक्ति अगर मुर्देको जीता माने या जिलाना चाहे तो उसका यह अभिप्राय मिथ्या ही है, उसी प्रकार पर द्रव्यमें कर्तृत्वपना यानी परसे किसी प्रकार भी लाभ-हानि मानना मिथ्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और यही रागद्वेषका मूल है। संक्षेपमें कहो तो परमें करनेकी जिज्ञासारूपी राग, और बाधकके प्रति द्वेष जब ही आता है जब कि आत्मा परमें अकर्तृत्वपनेके स्वभाव (ज्ञायकमात्र) को भूलकर परमें कर्तृत्व मानने लगता है, और वही परद्रव्यमें एकत्वबुद्धि है जो संसारका मूल है।

अपने ज्ञायक स्वभावके निर्णय और आश्रयमें ही परमें अकर्तृत्व आता है और यही मोक्षका यथार्थ पुरुषार्थ है।

परद्रव्योंसे बुद्धि हटाकर अपने स्वभावकी ओर दृष्टि करनेपर मात्र ज्ञाता-दृष्टापना ही अनुभवमें आता है, अतः रागादि भावोंका अस्तित्व ही नहीं दीखता। इसलिये ज्ञानी मात्र ज्ञायकपनेके सिवाय रागादिकका भी कर्तृत्व नहीं स्वीकारता, उन सबको भी ज्ञेयतत्त्वमें डालता है, क्योंकि रागादि पराश्रय करनेसे ही होते हैं अपने स्वभावसे च्युति होनेपर ही पर्यायमें होनेवाले रागादि अनुभवमें आते हैं, सो उनकी उत्पत्तिमें भी मात्र अपनी वर्तमान पुरुषार्थकी निर्बलताको ही कारण मानता है कोई पर क्षेत्र, काल, संयोग, अथवा कर्मादिको नहीं; फिर भी ज्ञायक स्वभावके जोरमें उनकी उपेक्षा होनेसे रागादि टूटते ही जाते हैं और स्वभावका बल बढ़ता ही जाता है। इसीके जोरमें रागादिको उपचारसे कर्मकृत कहा जाता है, स्वच्छन्दी होनेको नहीं। रागादिकी उत्पत्ति परद्रव्यका आश्रय करनेसे ही होती है और स्वद्रव्य (ज्ञानस्वभाव)का आश्रय करनेसे निरंतर निर्मलताकी उत्पत्ति होती है। ऐसे निर्णयसे ही सर्व विश्वसे उपेक्षा हो जानेसे श्रद्धानमें अत्यन्त निराकुलता आगई, यही परमसुख, स्वाभाविकसुख, आत्मीयसुख है, और उसही ज्ञायक स्वभावकी दृढ़ता एवं रमणतासे चारित्रमें परमनिराकुल शांति होने लगी, और जब अक्रम उपयोगसे मात्र ज्ञायकपना ही रह गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और कभी एक समयके लिये भी स्वभावसे च्युति नहीं है ऐसी अवस्था विशेषका नाम ही मोक्ष है, वही अविनाशी परम परम उत्कृष्ट निराकुलताजनित सुख है। उसहीका आंशिक अनुभव उपरोक्त निर्णयमें ठहरनेके समय सम्यक्त्वी आत्माको भी होता है, संक्षेपमें कहो तो द्रव्यदृष्टि यानी स्वभावदृष्टि सो सम्यग्दृष्टि और पर्यायदृष्टि यानी निमित्ताधीन दृष्टि सो मिथ्यादृष्टि, स्वभावदृष्टिसे मोक्ष और पर्यायदृष्टिसे संसार-भ्रमण होता है।

तब रागादिका कर्त्ता कौन है ?

अब यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि, रागादि आत्माकी अवस्थामें ही होते हुवे भी आत्माको उसका कर्त्ता कैसे नहीं माना जावे ?

समाधान इस प्रकार है कि—

ज्ञानी आत्मा निरंतर अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वरूपको अनुभवता होनेसे और उसीका स्वामी होनेसे रागादिका कर्त्ता नहीं है, और अज्ञानी स्वसे च्युत होकर रागादिमें कर्तृत्व स्वामित्व रखता होनेसे रागादिका कर्त्ता है। अज्ञानी वर्तमान एक एक समयकी अवस्थामें अपने स्वभावका आश्रय चूककर किसी अन्य द्रव्य (निमित्त)का आश्रय स्वीकार करता है जिनको ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मके नामसे पुकारा जाता है, फलतः उस पर्यायमें निमित्तके सम्बन्धरूप नैमित्तिक विकार उत्पन्न होता है। ऐसा नहीं हो सकता कि पर-द्रव्यका आश्रय किये बिना ही आत्मा भूल करता हो, तथा ऐसा भी नहीं है कि परद्रव्य आत्माको भूल करा देता हो, अनादि-कालसे ही एक-एक समयकी भूलको लम्बाते हुवे इस आत्माको स्वभावसे च्युत होनेका तथा पराश्रय करनेका अभ्यास पड़ा हुवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इसी कारण अनादि कालसे इसको ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मोंके निमित्तपनेका सम्बन्ध एक-एक पर्यायमें ही संतान-क्रमसे लगा हुआ है। जिस काल यह आत्मा अपने पुरुषार्थसे किंचित् कालके लिये भी पराश्रय छोड़ स्वाश्रयपना स्वीकार करेगा इन द्रव्यकर्मोंका सम्बन्ध भी इसके छूटता ही चला जावेगा और थोड़े ही कालमें सिद्ध अवस्था प्राप्त हो जावेगी, इस प्रकार ज्ञानी जीव, अपने ज्ञायक स्वभावके बलसे अपनी ही अवस्थामें होने वाले रागादि विभावोंको दूर करनेके लिये, भेदज्ञानके द्वारा, अन्य किसी भावका भी अपनेमें अस्तित्व नहीं स्वीकारनेसे, अन्य सब, जैसे भी जो भी भाव हों, सब पर भावमें डालकर उपेक्षित रहता है और अपने ज्ञानमात्रमें जागृत रहता है। निरंतर एक स्वभावकी ही मुख्यता होनेसे अन्य सब गौण होजाता है।

अपनी पर्यायमें होनेवाले क्षणिक रागादिको अपना स्वरूप नहीं मानते हुए भी वर्तमान पर्यायमें चारित्रमें जितने अंश च्युत होता है उतनी ही अपनी निर्बलता रूपी भूलको स्वीकारता है। इसलिये आप स्वच्छन्दी नहीं बनता।

जिसको अपने स्वभावका ज्ञान नहीं, अपने कर्तव्यका होश नहीं, और समझनेका पुरुषार्थ नहीं, वह कहे कि "मेरे कर्मका उदय ही ऐसा है कि मुझे आत्मरुचि नहीं होती, क्रोधादि होते हैं, क्या करें, कर्म जैसा नचाता है वैसा ही नाचना पड़ता है, यह जीव तो कर्मका खिलौना है, आदि आदि"—ऐसा जो कोई मानता है वह मिथ्याती, सांख्यमतीकी भांति है।

श्री स्वामी अमृतचन्द्राचार्यने भी समयसारके कलश २०५ में ऐसा ही कहा है कि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माऽकर्तारममी स्पृशंतु पुरुषं सांख्या इवाप्यार्हताः
कर्तारं कलयंतु तं किल सदा भेदावबोधादधः ।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥२०५॥

अर्थः—अर्हन्तके मतके जैनी जन हैं वे आत्माको सर्वथा अकर्त्ता सांख्यमतियोंकी तरह मत मानो, उस आत्माको भेदविज्ञान होनेके पहिले सदा कर्त्ता मानो और भेदज्ञान होनेके बाद उद्धत ज्ञानमन्दिरमें निश्चित नियमरूप कर्तापनकर रहित निश्चल एक ज्ञाता ही अपने आप प्रत्यक्ष देखो।

जो जीव रागको कर्मकृत मानकर स्वच्छन्दी एवं निरुद्यमी हो रहे हैं उनको आचार्य कहते हैं कि रागादि जीवके अस्तित्वमें हैं और वर्तमान पर्यायमें आप करता है, "जो करता है वही नाश कर सकता है" इसलिये भेदज्ञानके पहले तो रागादिका कर्त्तापना मानो और भेदज्ञानके बाद शुद्ध ज्ञायक स्वभावके आश्रयके बलसे रागादिका कर्त्ता न मानों, ये रागादि पराश्रय करनेसे होते हैं अतः उससे उपेक्षा करके अपने एक निश्चय स्वभावको ही मुख्य करके उपचारसे रागादिको कर्मकृत कहनेका उपचार है।

इसही अपेक्षाको लेकर ग्रन्थोंमें अनेक जगह ज्ञानी जीवकी अपेक्षा इन विभावोंका कर्त्ता उपचारसे कर्मोंको कहा गया है। जिसका प्रयोजन परद्रव्यका संयोग-सम्बन्ध बतलाना मात्र है। इसही आत्मावलोकन ग्रन्थमें पत्र ३१ से ५३ तकमें यह विषय इसही अपेक्षाको लेकर वर्णन किया गया है, इसकी पुष्टि ग्रन्थकारने स्वयं पत्र ५८ से ६० तकमें तथा पत्र ९१ से ९९ तक कर दी है।

पाठक तीनों अधिकार मिलाकर समझनेका प्रयत्न करें। इस प्रकार किसी भी ग्रन्थका अभिप्राय परद्रव्यसे अपना बिगाड़-सुधार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बतलानेका नहीं है लेकिन स्वभावसे च्युत होनेके समय संयोगसम्बन्ध (निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध) किस प्रकारका स्वतंत्र रूपसे होता है यही बतलाकर भेदज्ञान करानेका तथा अपने चिदानन्द स्वरूपमें रमणता करानेका ही प्रयोजन है।

इसलिये जहां यह विषय आवे उपरोक्त अपेक्षा लगाकर समझनेसे यथार्थ वस्तु समझनेमें कभी भूल नहीं होगी और यथार्थ मार्ग मिलेगा अन्यथा अनादि कालसे जो "अपनी भूल दूसरेके सिर डालकर स्वयं भूल रहित स्वच्छन्दी बननेका अभ्यास" पड़ा हुवा है वही जारी रहेगा, जिससे संसार-भ्रमणका कभी अंत नहीं आ सकता।

गोम्मटसारादिकी कथनीकी उक्त कथनसे संधि

अब यहां कोई कहे कि गोम्मट्टसारादिक बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें स्थान-स्थान पर यह आता है कि आत्माको तीव्र क्रोधकषायरूप द्रव्यकर्मके उदयमें तीव्र क्रोध होता है, मंद उदयमें मंद आदि-आदि, तो यह कैसे? उसका समाधान यह है कि यह कथन संयोग-सम्बन्ध बतलाने मात्रको है, वास्तवमें तो आत्माकी स्वभावसे च्युतिका नाम ही विभाव है, वह विभाव च्युतिकी अपेक्षासे सामान्य रूप है, तो भी तारतम्यताकी अपेक्षासे तथा जुदा-जुदा गुणोंकी पर्यायोंकी अपेक्षासे अनेक प्रकारका है और उस विभावके समय जिस निमित्तरूप परद्रव्यका आश्रयपना स्वीकार है वह भी अनेक प्रकारका है, फलतः विभावके भी अनेक प्रकार प्रत्यक्ष ही अनुभवमें आते हैं इसलिये जितने प्रकार विभावोंके हैं उतने ही प्रकार उन निमित्तरूप परद्रव्योंके हैं, विभाव समय-समयकी अपेक्षा अनन्त प्रकारको लिये है इसलिये निमित्त भी अनंत प्रकारके हैं। आचार्योंने निमित्तकी मुख्यतासे कथन करके उपादानमें होने वाले विकारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावोंको, इन दोनों परसे दृष्टि हटाकर यानी आश्रय छोड़कर, अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभावका आश्रय लेनेके लिये समझाया है।

जैसे कि—मोहनीय कर्मकी दर्शनमोहनीय प्रकृतिके उदयसे तथा चारित्रमोहकी अनन्तानुबन्धी प्रकृतिके उदयमें यह आत्मा सम्यग्दर्शनको प्राप्त नहीं कर सकता, ऐसे निमित्तके कथनकी मुख्यताका जहां विवेचन हो इसका अभिप्राय यह समझना कि आत्माकी जिस पर्यायकी स्वभावसे च्युति है, उस पर्यायने निमित्त-रूप परद्रव्यका आश्रय लिया हुवा है, वह आश्रय कौनका है, कि दर्शनमोहनीय प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी प्रकृतिकी उस समयकी पर्यायका, तो उस पर्यायमें सम्यग्दर्शनपनेका अभाव है यानी जो पर्याय जिस समय उपरोक्त प्रकृतियोंकी पर्यायके निमित्तपनेमें जुड़ी हुई होगी उस पर्यायकी सम्यग्दर्शनके अभावरूप मिथ्यात्व अवस्था होगी। इसका मतलब यह कभी भी नहीं है कि उपरोक्त प्रकृतियां उदयमें आईं इसलिये आत्माकी पर्याय मिथ्यात्वरूप होगई, जो ऐसा समझते हैं वे मूलमें ही भूल करते हैं, एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका कर्त्तापना मानते हैं, जो त्रिकाल असत्य है।

निजस्वभावकी श्रद्धा ही कर्तव्य है।

सारांश यह है कि गोम्मट्टसारादि ग्रन्थोंकी कथनी आत्मामें होनेवाली विकारी अवस्थाको बतलानेवाला माप है जैसेकि किसीके शरीरकी गर्मी यानी बुखार मापनेको थर्मामीटर! कभी थर्मामीटर बुखार पैदा नहीं करता वह तो जितना बुखार हो वह बतला मात्र देता है उसी प्रकार निमित्तरूप द्रव्यकर्मकी कथनीसे आत्माकी समय-समयमें होनेवाली विकारी अवस्थाका ज्ञान मात्र हो जाता है, उसमें कुछ विकार नहीं छूट सकता। इसका प्रयोजन तो निमित्त और शुभाशुभ विकार दोनोंपरसे दृष्टि हटाकर यानी आश्रय छोड़-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर, स्वभावका आश्रय करानेका है। इसलिये अपने निश्चय, अखण्ड, अभेद, निरपेक्ष, ध्रुव त्रिकालिक पूर्ण ज्ञायक स्वभावके आश्रय द्वारा उसहीका श्रद्धान ज्ञान एवं आचरण करना ही हम सबका मात्र कर्तव्य है, उसहीके लिये आचार्योंने सर्वप्रथम तत्त्व-निर्णयरूप अभ्यास करनेका ही जगह-जगह उपदेश दिया है, अतः आत्मोपलब्धिके लिये तत्त्वनिर्णयरूप अभ्यास सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।

किशनगढ़
ता० ४-३-४८

निवेदक—
नेमीचन्द पाटनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ नमः वीतरागाय

श्री पं. दीपचन्दजी शाह काशलीवाल कृत

आत्मावलोकन

(१) देवाधिकार

मङ्गलाचरण

दप्पणदंसणेण य ससरूवं पस्सदि कोवि णरो ।
तह वीयरायायारं दिट्ठा सयं राये तमहं हि ॥ १ ॥

दर्प्पणदर्शनेन च स्वस्वरूपं पश्यति कोपि नरः ।
तथा वीतरागाकारं दृष्ट्वा स्वयं रोग तत् अहं हि ॥ १ ॥

यथा कोपि नरः दर्प्पणदर्शनेन स्वस्वरूपं पश्यति तथा रागे सति च पुनः वीतरागाकारं बिम्ब दृष्ट्वा तत् स्वयं अहं हि ।

अर्थः—जैसे कोई पुरुष दर्पण देखकर उसमें अपने मुखका रूप निःशंकरूपसे देखता है, उसी प्रकार निश्चयसे स्वयं सरागतामें होते हुए भी वीतराग प्रतिबिम्बको देखकर वह वीतराग ही अपने आपमें, निःसंदेह, मैं ही हूँ, ऐसा जानता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ:—दर्पणके दृष्टान्त द्वारा यहाँ इतना भाव लेना कि दर्पणका देखना और उसमें अपने मुखका देखना होता है। सो इतना दृष्टान्तका भाव लेना वह दृष्टान्त इस प्रकार है—इस संसारमें कोई पुरुष दर्पणको देखनेसे (उसको) अपने मुखकी भले प्रकार प्रतीति होती है, ऐसा निःसंदेहरूपसे दिखाई देता है। इस दृष्टान्तकी भाँति यह जो आसन्न भवि (निकट भव्य) जीव है; वह जीव भी जब जिस कालमें सर्वथा सर्वकालमें सर्व प्रकारसे वीतरागरूप परिणमित हुआ, तब उस कालमें जैसे यह प्रत्यक्ष जो पद्मासन या कायोत्सर्ग पाषाणकी मूर्तिका आकार है, (उनका) न सिर काँपता है, न पलक, भौंह, नेत्र, नासिका काँपती है, न जीभ, दाँत, ओठ काँपते हैं, न कंधा, भुजा, हाथ, अंगुली काँपते हैं, न हृदय, पेट, जाँघ, पिंडली, पैर काँपते हैं, न रोम तक हिलते हैं, न नख बढ़ते हैं, न बाल बढ़ते, न हिलती है, न उठती है, न बैठती है; जैसे प्रत्यक्ष इस पाषाणकी मूर्तिको देखते हैं, उसी प्रकार जब यह जीव सर्वथा वीतरागरूप परिणमता है, उसी समय यह देह परमौदारिक कायोत्सर्ग या पद्मासन आकार होती है, चेतनप्रतिमा, पाषाणप्रतिमा समान होती है। पाषाण और परमौदारिक प्रतिमामें भेद कुछ नहीं होता, दोनों वज्रकी मूर्ति हैं। वीतराग जीवकी ऐसी चेतनमूर्ति अथवा स्थापना मूर्ति, इन दोनोंको निकट भव्य जीव देखकर मनमें ऐसा विचार करते हैं—वह विचार कैसा होता है?—

वीतराग तो परमात्मदशा है—परमेश्वर है—सर्वज्ञ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। वीतरागका अर्थ यह है कि वीत अर्थात् गया है; राग अर्थात् रंजना भेद द्वारा उस प्रकार होना; ऐसा भाव हो जाये उसको वीतराग कहते हैं। इससे यह जाना जाता है कि अपनी पूर्व अवस्थामें वह पुरुष रागी था। क्योंकि गया तो तब कहलाये जब (पूर्वमें) हो, अन्यथा ऐसा नाम प्राप्त न करे। अतः उसके राग था, जब राग गया तब वीतराग परमेश्वर कहलाया।

यहाँ एक दूसरा विचार आता है—जो जायेगा वह वही वस्तुत्व द्वारा उत्पन्न नहीं है। वह कोई (अन्य) वस्तुके द्वारा (-परवस्तुके आश्रयसे) दोष उत्पन्न किया हुआ है। और जो (स्व) वस्तुत्वसे (स्वाश्रयसे) उत्पन्न है वह कभी नहीं जाता। यह प्रगट बात है। किन्तु एक बात और है, यह जो दोष है, वह उस वस्तुत्वके ही (अनित्य अस्तित्वमें) उत्पन्न होता है, वस्तु बिना उत्पन्न नहीं होता है। फिर भी वह विकार काल पाकर जाता है। तब वह जो कुछ वस्तुत्व भाव है वही रह जाता है। इसमें धोखा नहीं है। जैसे पानीसे उष्णतारूप विकार दूर हुआ और शीतल वस्तुभाव सहज ही रह जाता है। जैसे स्वर्णसे काला कलंक जिस समय दूर होता है उसी समय सोलह वर्ण वस्तुभाव सहज ही रह जाता है। अतः यह बात ठीक है कि जो भाव जाता है वह विकार है। उस विकारके जानेसे जो कुछ वस्तुभाव है, वह सहज ही रह जाता है। इससे भले प्रकार जाना जाता है कि जिसके जब राग व्यतीत होता है—छूटता है, तब जो वस्तुत्वभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था वही प्रत्यक्ष रह जाता है। वह वस्तुत्वभाव तो स्वयं परम पुरुष है, वही है। कछु स्वयं स्व वही वस्तु है। जो गया वह विकार ही था। उस पुरुषका ही कुछ भूलरूप भ्रम है। पुरुषका मूल वस्तुत्वभाव तो वह है जो इस भूलके जाने पर रहता है।

जब इस विधि (प्रकार) यथार्थरूपसे वीतरागकी जंगम–स्थावर (चेतन या जड़) प्रतिमा देखनेसे विचार आया तब ही अपनी ओर (तरफ) देखने पर विचार आया, विचार करने पर स्वयंको भी क्या देखा? निःसंदेह स्वयंको सरागी देखा। इस प्रकार स्वयंको सरागी देखनेसे यह निर्णय हुआ कि जैसे यह जीव (भी पूर्वदशामें) सरागी था, (अब) वीतराग होकर वस्तुत्वभावरूप रह गया है, वैसे ही मेरा भी विकार–राग वीतेगा (छूटेगा) तब मैं भी वस्तुत्वभावके रूपको इसी प्रकार प्रत्यक्ष (प्रगट दशामें शुद्ध) हो जाऊँगा।

निःसंदेह तो मैं–जो मूल वीतराग वस्तुत्वभाव है, वही मैं हूं। उस वस्तुभावसे मैं अभेद ही हूं। और जो यह रागादिका प्रसार है वह विकार है। कुछ वस्तुत्व-भावमें तो वह नहीं है। वस्तुत्वभावके ऊपर–ऊपर कुछ दोष उत्पन्न हुआ है। मूलरूपसे मैं वही हूं जो इस विकारके जाने पर रह जाता है। निःसंदेह मैं वही हूं। और यह विकारका सर्व प्रसार काल पाकर जायेगा तो जाओ, परन्तु मैं तो मूल वीतरागरूप स्वभाव हूं। तो इस प्रकार वीतरागकी प्रतिमा देखनेसे स्वयंको ही वीतरागसे अभेद सम्यक् (भली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार) जावनेके परिणाम होते हैं। अतः जिस प्रकार दर्पण-का देखना मुखके देखनेको प्रगट करता है उसी प्रकार वीतरागकी जड़, चेतन प्रतिमाका दर्शन भी संसारी जीवके वस्तुत्वभाव प्रगट करने—दिखलानेको कारण है। इस कारण इस प्रतिमाको देवत्व नाम प्राप्त हुआ। क्यों ?

(क्योंकि) इन वीतरागकी प्रतिमाका देखना निःसंदेह संसारीके निजरूप दिखलानेका कारण है। इस कारणसे प्रतिमाके देवत्वका कथन इस प्रकार आया है। ऐसा देवत्व अन्य स्थानपर नहीं पाया जाता। ऐसा देव इन (निज) परिणामोंको, नीचेकी व्यवहार-अवस्थामें कारण है ॥१॥

इति देव अधिकारः।

---

(२) गुरु अधिकार

वियरायं वियरायं, जियस्स णिय ससरूओ वियरायं।
मुहु मुहु गणदि वियरायं, सो गुरुपयं भासदि सया ॥ २ ॥

वीतरागं वीतरागं जीवस्य निजस्वस्वरूपो वीतरागं।
मुहुर्मुहु गृणाति वीतरागं, स गुरुपदं भासति सदा ॥ २ ॥

वीतरागं वीतरागं जीवस्य निजस्वरूपो वीतरागं मुहुर्मुहुः गृणाति कथयति स पुरुष गुरुपदं स्थानं भासति शोभते।

अर्थ—जीवका निजस्वरूप वीतराग है, ऐसा बारंबार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहता है वही गुरु पदवीको शोभित होता है।

भावार्थ—अट्ठाईस मूलगुण, बाईस परीषह, पंचाचार आदि सहित विराजमान, परमाणुमात्र बाह्य परिग्रह नहीं है और अंतरंगमें भी परमाणुमात्र परिग्रहकी इच्छा नहीं है, अनेक उदासीन भावोंसे विराजमान है और निज जाति–स्वरूपको साधते है, सावधान हो समाधिमें लीन होते हैं। संसारसे उदासीव परिणाम किये है, ऐसे जो जैन साधु है, अपनेको तो वीतरागरूप अनुभवते ही हैं और मनको स्थिरीभूत करके जब किसीको उपदेश भी देते हैं तो अन्य सब छोड़कर जीवके एक निज वीतरागस्वरूपको ही बारं-बार कहते है। उनके अन्य कुछ अभ्यास नहीं है, यही एक अभ्यास है। स्वयं भी अंतरंगमें स्वयंको वीतरागरूप अभ्यास करते हैं और बाह्यमें भी जब बोलते है, तब आत्माका वीतराग स्वरूप है, यही वचन बोलते है। ऐसा वीतरागका उपदेश सुनते ही निकट-भव्यको निःसंदेहरूपसे निज वीतरागस्वरूपकी सुधि होती है। इसमें संशय नहीं है। जिस साधुके वचनमें ही ऐसा वीतरागका ही कथन है, उस जैन साधुको ही 'निकटभव्य' गुरु कहते है; क्योंकि अन्य कोई पुरुष तत्त्वका ऐसा उपदेश नहीं कहता है अतः इस पुरुषको ही गुरुकी पदवी शोभायमाव होती है, अन्यको शोभायमान नहीं होवी। यह विःसंदेह रूपसे जानना। इति गुरु अधिकारः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) धर्माधिकार

अहमेव वीयरायं, मम णिय ससरूवो वीयरायं खलु ।
तम्हा हि वीयरायत्तं, फुड णियधम्म सहावो तप्पदि ॥ ३ ॥

अहमेव वीतरागं, मम निज स्वस्वरूपो वीतरागं खलु ।
तस्मात् हि वीतरागत्वं, स्फुटं निजधर्मस्वभावो तप्यति ॥ ३ ॥

अहं एव वीतरागं खलु मम निज स्वस्वरूपो वीतरागं तस्मात् स्फुटं निजधर्मं स्वभावो हि वीतरागत्वं तप्यति ।

निश्चयसे मैं वीतराग हूं, और निश्चयसे मेरा निजरूप वीतराग है। इस कारणसे प्रगट निजजाति वस्तुस्वरूपस्वभाव निश्चयसे वीतराग भावसे ही देदीप्यमान है।

भावार्थ—जब अनादिसे भ्रमते भ्रमते भव्य जीवको [1]काललब्धि प्राप्त हुई, अपना निज स्वस्वरूप व्यक्तरूप परिणमित हुआ, तबसे अपना वीतरागरूप जानता है, देखता है, आचरण करता है। वह निज धर्म वीतराग है ऐसा अनुभव करता है। अन्य सर्व भाव अशुद्ध—भिन्न—अधर्म जानता है। इति धर्माधिकारः ।

---

१ जहां जहां काललब्धि शब्द आये वहां मोक्षमार्गप्रकाशक अ. ९ पेज ३१०–३११ के अनुसार ऐसा अर्थ लगाना—

प्रश्न—मोक्षका उपाय काललब्धि आनेपर भवितव्यानुसार बनता है या मोहादिकका उपशमादि होनें पर बनता है, अथवा अपनें पुरुषार्थसे उद्यम करनेपर बनता है, सो कहिए। जो पहले दो कारण मिलनें पर बनता है तो हमको उपदेश क्यों देते हो? और पुरुषार्थसे बनता है तो उपदेश सब सुनते हैं, उनमें कोई उपाय कर सकता है कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) विधिवाद

सहावं कुणोदि दव्वं, परणमदि णिय सहाव भावेसु ।
तमयं दव्वस्सविहिं, विधिवादं भणइ जिनवाणी ॥४॥

स्वभावं करोति द्रव्यं परिणमति निजस्वभाव भावेषु ।
तमयं द्रव्यस्य विधिर्विधिवादं भर्णात जिनवाणी ॥४॥

नहीं कर सकता है, सो कारण क्या?

समाधान—एक कार्य होनेमें अनेक कारण मिलते हैं। मोक्षका उपाय बनता है तब तो पूर्वोक्त तीनोंही कारण मिलते हैं, और नहीं बनता है. तब तीनों ही कारण नहीं मिलते हैं। पूर्वोक्त तीनों कारणोंमें काललब्धि या होनहार तो कुछ वस्तु नहीं है। जिस कालमें कार्य बने वही काललब्धि और जो कार्य हुआ वही होनहार। तथा कर्मका उपशमादि है, सो पुद्गलकी शक्ति है। उसका आत्मा कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है। तथा पुरुषार्थसे उद्यम करते हैं, वह आत्माका कार्य है। अतः आत्माको पुरुषार्थ द्वारा उद्यम करनेका उपदेश देते हैं। तब यह आत्मा जिस कारणसे कार्यसिद्धि अवश्य हो उस कारणरूप उद्यम करता है, वहाँ तो अन्य कारण मिलते ही मिलते हैं और कार्यकी भी सिद्धि होती ही होती है। तथा जिस कारणसे कार्यसिद्धि हो अथवा नहीं भी हो, उस कारणरूप उद्यम करता है, तब अन्य कारण मिलते हैं तो कार्य सिद्धि होती है, नहीं मिलते तो सिद्धि नहीं होती। जिनमतमें जो मोक्षका उपाय कहा है उससे मोक्ष होती ही होती है। अतः जो जीव पुरुषार्थ द्वारा जिनेश्वरके उपदेश अनुसार मोक्षका उपाय करता है, उसके काललब्धि या होनहार भी हुई और कर्मका उपशमादि हुआ है, तो वह ऐसा उपाय करता है। अतः जो पुरुषार्थ द्वारा मोक्षका उपाय करता है, उसको सब कारण मिलते हैं, ऐसा निश्चय करना। और उसको अवश्य मोक्षकी प्राप्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खलु निश्चयेन जीव द्रव्यस्य वस्तुनो अयं प्रत्यक्ष विधिरर्थं यथार्थयुक्तिः, निजस्वभावभावे स्वजातिस्वरूपविषये मध्ये जीवद्रव्यं वस्तुस्वभावं स्वस्वरूपं करोति. उत्पद्यते वा अथवा परिणमति, एवं जिनवाणी दिव्यध्वनितं स्वरूप-परिणमनं विधिवादं वस्तुरीति युक्ति कथनं भणति कथयति।

निश्चयसे वस्तुकी यह सच्ची रीति है कि निज जाति अपने स्वरूपमें वस्तु (जीव) अपने ही स्वरूपसे उत्पन्न होती है, परिणमती है, जिनवाणी (द्वादशांगवाणी) उसको विधिवाद कहती है।

भावार्थ—एक तो इस द्वादशांगमें ऐसा कथन प्रचलित है—वह क्या? जीव अपनेही स्वरूप ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप परिणमता है. उस रूप परिणमते कर्मोंका संवर होता है, कर्मोंकी निर्जरा होती है और कर्मोंका मोक्ष होता है। तब परमानन्द निज सुख उत्पन्न होता है। ऐसी जीवकी स्वरूप परिणति जीवको विधियोग्य है क्योंकि जीव सुखी होता है। और जो जीवकी परभावरूप अशुद्ध परिणति है, उस परिणतिरूप परिणमते कर्मोंका आस्रव होता है और आत्मप्रदेशोंसे परस्पर एक क्षेत्रावगाह होकर कर्मोंका बन्ध होता है। पुण्य-पाप विपाक होने पर दुखी होता है। तो ऐसी जीवकी अशुद्धपरिणति जीवको अविधिरूप है—अयोग्य है क्योंकि जीव दुःखी होता है; अतः इस जीवको परमानंद सुख होनेके लिये स्वरूप परिणति विधि योग्य है। इसलिये जब स्वरूप परिणतिरूप परिणमता है तब सहज ही उन परिणामों द्वारा अविधि परिणति (अवैधपरिणति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नष्ट हो जाती है और वचन व्यवहार द्वारा भी उसीप्रकार कहते हैं—स्वरूप परिणतिरूप प्रवृत्त होओ, यह प्रवर्तन तुम्हें योग्य है। इति विधिवादः।

(५) चरितानुवाद

रायदोह भावाणं, उदियभावाणं कहाकहणं जहा।
तं चरियानुवायं हि, जिण समय णिदिट्ठं तहा॥ ५॥

रागदोषभावानां औदयिकभावानां कथाकथनं यथा।
तं चरितानुवादं हि, जिन समये निर्दिष्टं तथा॥ ५॥

हि सत्येन यथा येन प्रकारेण रागदोषभावानां पराचरणभावानां वा औदयिकभावानां दुखास्वादभावानां कथाकथनं स्वरूप कथनं तं कथनं चरितानुवादं–चरित्रवादं–जिन समये द्वादशांगे निर्दिष्टं कथितं।

निश्चयसे जिस जिस प्रकारसे पर आचरणभावों हीका, अथवा शुभ–अशुभ स्वादभावोंहीका जो स्वरूपकथन, उस कथनको चरितानुवाद संज्ञा (नाम) द्वारा द्वादशांगमें कहा गया है।

भावार्थ—पुद्गल स्वामित्व–मिथ्यात्व वह पर आचरणका कथन है और उच्चस्थानसे गिरना और वह गिरना भी पराचरणको ही प्रगट करता है। अज्ञानीके स्थूल बन्ध और अबुद्धिपूर्वक जघन्य ज्ञानीके सूक्ष्मबंध, इस प्रकार बंधहीका भाव, वह भी पराचरणकी प्रसिद्धता है तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरागी जीवभाव वह भी पराचरणकी प्रसिद्धता है; ऐसे ऐसे भावोंका ही कथन वह केवल पराचरणका चारित्र है। और यह क्रोध पुद्गल उदयरसका भोग, मान, माया, लोभ, अनंतानुबंधी या अप्रत्याख्यान या प्रत्याख्यान या संज्वलन नोकषाय इन सर्वं पुद्गलउदयरसका भोग, गति संबंधी पुद्गलोंका, योगसंबंधी पुद्गलोंका इन्द्रियोंमें आवरण पुद्गलोंका, अन्तराय पुद्गलोंका, इन्द्रिय–विषय पुद्गलोंका, पुण्य-पाप पुद्गलोंका, इस प्रकार सर्वं पुद्गलउदयरसका भोग, ऐसे भोग होते जीवको क्रोधी कहते हैं, मानी कहते हैं, मायावी कहते हैं, लोभी कहते हैं, मनुष्य कहते हैं, देव कहते हैं, पुण्यशाली कहते हैं, पापी कहते हैं, और दुःखी कहते हैं; इस प्रकार जो सर्व जीवोंका कथन है वह सब पुद्गल विपाकके भोगभावका विभिन्न प्रकारके चरित्र द्वारा प्रगटपना है। इस प्रकार इन दोनों पराचरण औदयिक भावोंके विभिन्न प्रकारके रूप द्वारा उन्हींका दरसाव होता है अर्थात् वे ही प्रगट होते हैं। ऐसे इन दोनोंके सर्व ही भावोंको चारित्र नामसे कहते हैं। इस प्रकारका वह चारित्र कथन भी द्वादशांगमें प्रचलित है। इति चरितानुवाद।

(६) यथास्थितिवाद

अहमज्झउड्ढलोया, लोयालोयाहि सव्वदव्वाणि ।
सासयं चिट्ठंति जहा, जहा ठियेतं भणइ समये ॥ ६ ॥

अधःमध्य उद्धवं लोकाः लोकालोकाहि षट् सर्वं द्रव्यानि ।
शाश्वतं तिष्ठंति यथा, यथा स्थितं भणति समये ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अध:मध्यऊर्ध्वलोका: त्रैलोक्य लोकालोका वा षट् सर्वं द्रव्यानि हि स्फुटं यथा येन येन प्रकारेण शाश्वतं नित्यं तिष्ठन्ति तं यथा शाश्वतं भावं समये परमागमे यथा स्थितं भणति ।

जो अधोलोक, मध्यलोक, उर्ध्वलोक हैं तथा लोक–अलोक हैं तथा छह द्रव्य हैं वे सब अपनी अपनी शाश्वत स्थितिसे जैसे जैसे स्थित हैं उस शाश्वत स्थितिको जिनागममें यथास्थिति कहते हैं ।

भावार्थ—सात नरकोंकी जैसी शाश्वत स्थिति है, असंख्यात द्वीप समुद्रोंकी, सोलहस्वर्ग, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पंच पंचोत्तर (विजयादि) विमान सिद्धशिला, सर्वं (तीनों) वातवलय–इनकी जैसी शाश्वत स्थिति है वैसी स्थिति सदा शाश्वत रहती है। तथा लोकाकाशकी और अलोकाकाशकी जैसी स्थिति है वैसी स्थिति शाश्वत है । जीव पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छहों द्रव्य अपने अपने जैसे जैसे गुणों द्वारा अपनी अपनी जैसी जैसी पर्यायों द्वारा सदा शाश्वत स्थितिसे स्थित हैं । अपनी अपनी भिन्न भिन्न सत्ता द्वारा अपनी अपनी जैसी जैसी स्थिति है, वैसी स्थितिसे कभी भी चलायमान नहीं होते । सदा जैसेके तैसेही रहते हैं, उसका नाम यथास्थितिभाव है । ऐसा यथास्थितिभावका कथन भी द्वादशांगमें प्रचलित है । इति यथास्थितिवाद जानना ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७) ज्ञेयवाद

णाणस्स जाव विसया, सपर सव्व दव्व गुणा तिपज्जाया।
सहाव विहावभावा, णेयं हवदि तं खलु समये ॥ ७ ॥

ज्ञानस्य यावद्विषया, स्वपरद्रव्यगुणा त्रिपर्याया: ।
स्वभाव बिभावभावा, ज्ञेयं भवति तं खलु समये ॥ ७ ॥

यावद्विषया पदार्था ते तावत् ज्ञानस्य ज्ञेयं ज्ञातुं योग्यं भवति। ते के? स्व पर सर्वं द्रव्य गुणा, अतीत–अनागत-वर्तमान त्रय पर्याया, स्वभाव विभावा, निज वस्तु जाति-भाव, पर विकार भावा, खलु स्फुटं तं ज्ञेयं समये आगमे भणितं।

जितनी भी वस्तु हैं, उतनी सब ज्ञानके जाननेके योग्य होती हैं। वे कौन? जितने भी निज द्रव्य–गुण–परद्रव्यगुण हैं, और जितनी भी अतीत, अनागत, वर्तमान द्रव्यकी पर्यायें हैं, और जितने भी निज–निजभाव, परभाव हैं, वे सब प्रगट हैं। उन सबको आगममें ज्ञेयभाव कहा है।

भावार्थ—हे भव्य! यह जो ज्ञान अर्थात् जानना है, उस जाननेको (ज्ञायकको), जितना भी जानना है, वह सब ज्ञेय नाम पाता है। वह क्या क्या है? जानना गुण निज द्रव्य सत्ताको जानता है, एक निज द्रव्यके अनंत गुणोंको जानता है, उन एक एक निज गुणकी अनंत शक्तिको जानता है; तथा निज द्रव्य-गुणका परिणमन तीनोंकालका भिन्न–भिन्न जानता है। तथा जानना स्वयं है, अपने जाननेरूप (ज्ञायकरूप)को भी जानता है। इसीप्रकार पर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्योंको भिन्न–भिन्न जानता है, उन एक एक परद्रव्यके अनंत गुणोंको जानता है, उन एक एक पर गुणकी अनंत-शक्ति जानता है, तथा उन पर द्रव्य–गुणोंका परिणमन तीनों कालका भिन्न भिन्न जानता है। तथा छहों द्रव्योंके गुण–पर्यायोंके निज जाति स्वभावरूप भावको भिन्न जानता है। तथा जीवके परभावको भिन्न जानता है, पुद्गलके परभावको भिन्न जानता है। संसार परिणति और मुक्ति परिणतिको जानता है।

भावार्थ—जितना द्रव्य–गुण–पर्यायभाव है, उतना सब साक्षात् जानता है। ऐसा जो कुछ भी है, सर्व ज्ञान गुणके जाननेके गोचर होना, वह सब ज्ञेय नाम पाता है। ज्ञानके गोचरको आगममें ज्ञेय कहा जाता है सो जानना। इति ज्ञेयवाद ।७।

---

(८) हेय व्याख्या

जह ससहावे परिणमदि, तह विभावो सयं सहयेण हीयदि।
तं तत्थ हेयभावं, हेयभाव मिणयं जिणणिदिट्ठं ॥ ८ ॥

यथा स्वस्वभावे परिणमति, तथा विभावो स्वयं सहजेन हीयति।
तं तत्र हेयभावं, हेयभाव मिदं जिननिर्दिष्टं ।। ८ ।

स्वस्वभावे ज्ञानदर्शनचरित्रात्मनि निज जाति स्वरूपे यथा येन येन क्रमेण परिणमति, चरति, तिष्ठति वा अनुभवति वा विश्रामति, तथा तेन तेन क्रमेण विभावो विकारभावः तत्र तस्मिन्काले सहजेन अयत्न पूर्वकेन स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीयति नश्यति विलयं याति तं हेयभावं नास्तिभावं इदं जिननिर्दिष्टं जिनकथितं ।

अर्थ—यह आत्मा अपने निज जातिरूपमें जैसे जैसे परिणमता है—विश्राम लेता है तैसे तैसे अशुद्ध भाव उसी कालमें यत्न बिना ही अपने आप ही नाश हो जाता है। वह अशुद्ध भाव अनित्य भाव है। यह हेय भाव जिनवचनमें कहा है।

भावार्थ—हे भव्य, यह चारित्रगुण जैसे जैसे निज स्वरूपको प्राप्त होता है, वैसे ही वैसे स्थिर विश्राम लेता है, उसी उसी कालमें सर्व गुणोंकी अशुद्धता–विकारभाव–अनित्यभाव–क्षणभंगुरभाव अपने आप ही नष्ट होती जाती है—विलय होती जाती है—अतः उसे जिनदेवने हेयभाव कहा है। ऐसा हेयभावका कथन जिनागममें प्रचलित है, उसे जानना। इति हेय व्याख्यानं।

(९) उपादेय स्वरूप व्याख्यान

सममयस्स समयपत्तो. णियसरूवमायरइ परिणामेहिं ।
परिणमदि वाससरूवं, तमुवादेयं भणइ जिणो ॥ ९ ॥

स्वसमयस्स समयप्राप्तौ, निजस्वरूपमाचरयति परिणामैः ।
परिणमति वा स्वस्वरूपं, तं उपादेयं भणति जिनः ॥ ९ ॥

[हेय-उपादेयपना जीवकी परिणतिका नाम है १. द्रव्यकी शुद्धता प्रगट करनेके अर्थमें उपादेय है, २. अशुद्धता हेय है और ३. आश्रय करनेके अर्थमें तो त्रैकालिक निज परमात्म–द्रव्य ही उपादेय है।]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समयप्राप्तौ काललब्धिप्राप्तौ सति स्वसमयस्य चारित्रस्य निजस्वरूपस्य परिणामैः आचरयति व्याप्नोति वा अथवा एवं स्वरूपं परिणमति तं स्वस्वरूपं उपादेयं आचरणं जिन भणति।

अर्थ—जैसे जैसे काललब्धिकी प्राप्ति होती जाती है उस उस काललब्धिकी प्राप्तिमें आत्मचारित्रगुणका (निज-रूप आत्माहीका) आचरण परिणामों द्वारा व्यक्त व्याप्त होता है, अथवा इस प्रकार भी कहो, वह स्वरूपाचरण ही प्रवर्तता है। उसी स्वचरण परिणमनको (स्वरूपाचरणके परिणमनको) जिनदेव–उपादेय संज्ञा द्वारा कहते हैं।

भावार्थ—जो जो स्व-चारित्रकी शक्तियाँ विकाररूप हो रही हैं, वह वह काललब्धि प्राप्त होवे पर (निज) परिणामोंके परिणमनसे उस स्वचारित्रकी निजरूप होती है वही स्वरूप ग्रहण है। इस प्रकार कोई कहे कि उस स्व-चारित्रका स्वरूप प्रगट होकर प्रवर्तता है वह भी स्वरूप ग्रहणका ही कथन है, ऐसे प्राप्तिरूप स्वरूपके [1]परिणमनको उपादेय संज्ञा जिनदेवने भी कही है, उसे 'उपादेय' आगममें जानना। इति उपादेय स्वरूप व्याख्यानं।

संसारपरिणतिका नास्तिपना वह 'हेय' जानना और स्वरूपकी शुद्धताका प्रगट होना वह उपादेय जानना। एक ही कालमें दोनों होते जाते हैं। यही निश्चय हेय–उपादेय जानना। व्यवहारसे परपरिणति राग, द्वेष, मोह, क्रोध,

१ संवर–निर्जरा और मोक्षपर्याय प्रगट करनेके अर्थमें उपादेय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान, माया, लोभादि सर्व अवलम्बन हेय करना। संसारी जीवोंको एक चित् आत्मपिण्डमें अवलम्बन करना, वैराग्य, उदासीनता, (तथा) संवरको उपादेय करना, ऐसा उपदेश करना। इस प्रकार व्यवहार हेय उपादेय जानना।

(१०) व्यवहार वर्णन

पज्जाय भावना सव्वे, सव्वे भेय करणा च जोग खिरणाहि।
ससहाव दोणकधणा, तं ववहारं जिणभणिदं ॥ १० ॥

पर्यायभावना सर्वे, सर्वे भेद करणा च जोग क्षरणाहि।
स्वभाव तो अन्य कथना, तं व्यवहारं जिनभणितं ॥ १० ॥

सर्वे पर्याय भावनां सर्व पर्याय जाता भावा व्यवहारं भवंति हि स्फुटं। सर्वे भेदा करणाभावा व्यवहारं भवंति च पुनः जोग क्षरनावं बन्धमोक्ष व्यवहारं भवंति, पुनः स्वभावतः अन्य कथना अन्य वादा व्यवहारं भवंति, तं व्यवहारं जिन भणितं कथित।

सर्व जितने भी पर्यायके भाव होते हैं वे सर्व व्यवहार नाम पाते हैं और जितने भी एकके अनेक भेद करना, वे वे सर्व व्यवहार नाम पाते हैं। और जितना भी बंध और मुक्त, उतना सर्व व्यवहार नाम पाता है। स्वभावसे जो अन्य भाव हैं, वे सर्व व्यवहार नाम पाते हैं। वही व्यवहार जिन आगममें कहा है।

भावार्थ—आकाशमें सर्व द्रव्योंका रहना, जीव पुद्गलादिको धर्म-अधर्म गति, स्थितिमें सहकारी होना, अथवा सर्व द्रव्योंके परिणाम परिणमानेको कालकी वर्तना सहकारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होना तथा पुद्गलादिकी गति द्वारा कालद्रव्यका प्रमाण परिमाण उत्पन्न होना है, छहों द्रव्य परज्ञेय ज्ञानमें हैं, ज्ञान छहों परज्ञेयमें, ज्ञान–दर्शन–गुणोंकी एक एक शक्ति एक एक स्व पर ज्ञेय भेदोंके प्रति लगाना, ऐसे ऐसे भाव तथा परस्पर सर्व द्रव्योंका मिलाप होना, ऐसे ऐसे पर्यायों-के भाव तथा विकार उत्पन्न हुआ, स्वभाव नष्ट हुआ, पुनः स्वभाव उत्पन्न हुआ, विकार नष्ट हुआ, जीव उत्पन्न हुआ, जीवका मरण हुआ, यह पुद्गल स्कन्धरूप हुआ या कर्मरूप हुआ या अविभागी पुद्गल हुआ, संसार परिणति नष्ट हुई, सिद्ध परिणति उत्पन्न हुई, तथा मोह, अंतराय कर्मोंकी रोक नष्ट हुई। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनंत स्वचरित्र वह अनन्त वीर्य द्वारा प्रगट हुए। मिथ्यात्व नष्ट हुआ, सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ, अशुद्धता नष्ट हुई, शुद्धता उत्पन्न हुई, पुद्गलसे जीव बंधको प्राप्त हुआ, जीवका निमित्त प्राप्त होने पर पुद्गल कर्मरूप हुए। जीवने कर्म नष्ट किये, यह यह उत्पन्न हुआ, यह यह नष्ट हुआ, वह उत्पन्न हुआ, वह नष्ट हुआ, ऐसे ऐसे पर्यायोंके भाव ऐसे ऐसे पर्यायोंके उत्पन्न और नष्ट भाव सर्व व्यवहार नाम पाते हैं।

तथा एक आकाशके लोक-अलोक भेद करना, कालकी वर्तनाका अतीत, अनागत, वर्तमान भेद करना। तथा इसी प्रकार एक वस्तुका द्रव्य, गुण, पर्यायसे भेद करना। एक सत्का उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे भेद करना। एक वस्तुका कर्त्ता–कर्म–क्रियासे भेद करना, एक जीववस्तुका बहिरात्मा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंतरात्मा, परमात्मा; एक द्रव्य समूहका असंख्यात अथवा अनंत प्रदेशोंसे भेद करना। एक द्रव्यका अनंत गुणोंसे भेद करना, एक गुणका अनंत शक्तियोंसे भेद करना एक पर्याय-का अनंत परिणामोंसे भेद करना, एक वस्तुका अस्ति–विधिसे, नास्ति–अविधिसे भेद करना। एक वस्तुका द्रव्य, सत्व, पदार्थ, गुणी, पर्यायी, अन्वयी, अर्थ, नित्य ऐसे ऐसे नाम भेद करना। एक जीवका आतमा, परमातमा, ज्ञानी, सम्यक्त्वी, चारित्री, सुखी, वीर्यधारी, दर्शनी (दर्शनवंत), सिद्धवत्, चेतन, चिदानन्द, चित्–दर्शन–ज्ञान–चारित्र, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सुखी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी–इस प्रकार नाम भेद करना। ज्ञान, बोध, ज्ञप्ति, सम्यक्त्व, आस्तिक्य, श्रद्धान, नियत–प्रतीति–यत्तत् (वह), एतत् (यह) तथा चारित्र, आचरण, स्थिर–विश्राम, समाधि, संयम, एकान्त-मग्न स्थगित अनुभवन, प्रवर्तन, सुख, आनंद, रस, स्वाद, भोग, तृप्ति, संतोष, वीर्यबल, वीर्यशक्ति, उपादान, तेज, ओज। एक अशुद्धका विकार, विभाव, अशुद्ध, समल, परभाव, संसार, आस्रव, रंजकभाव, क्षणभंग, भ्रम और अन्यत् (कोई एक) एक एकके इस प्रकार नाम द्वारा भेद करना।

एक ज्ञानका मति श्रुत अवधि, मनःपर्यय, केवल पर्यायसे भेद करना। एवं अन्यत् (इसीप्रकार और भेद करना)। ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि एक एकके कुछ, थोड़ा, जघन्य, उत्कृष्टसे परिणति भेद करना। एकके अनेक भेद करना। एक वस्तुका निश्चय व्यवहार-परिणति भेद करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस इस प्रकार एकका भेद करना, वे सब भेदभाव व्यवहार संज्ञाको प्राप्त हैं।

गुण बंध–गुणमोक्ष, द्रव्यबंध–द्रव्यमोक्ष ऐसे ऐसे सर्व भावोंको भी व्यवहार कहते हैं, तथा विकार, काल भावके वशसे स्वभाव छोड़कर द्रव्य–गुण–पर्यायोंको अन्य ही भाव कहना। ज्ञानीको अज्ञानी, सम्यक्त्वीको मिथ्यात्वी, स्व-समयीको परसमयी, सुखीको दुःखी, अनंत ज्ञान–दर्शन–चारित्र-सुख-वीर्यको कतिपय (कुछ, थोड़ासा) कहना।

ज्ञानको अज्ञान, सम्यक्त्वको मिथ्यात्व, स्थिरको चपल, सुखको दुःख, उपादेयको हेय, अमूर्तिकको मूर्तिक, परमशुद्ध-को अशुद्ध, एक प्रदेशी पुद्गलको बहुप्रदेशी, पुद्गलको कर्मत्व, एक चेतनरूप जीवको मार्गणा गुणस्थानादि जितनी परिणतियोंसे निरूपण करना। तथा एक जीवको पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, बंध, मोक्ष परिणति द्वारा निरूपण करना। तथा जितना वचनपिंड द्वारा कथन वह सब व्यवहार जानना। तथा आत्मासे भिन्न अन्य सबको व्यवहार कहते हैं। स्वभावसे अन्य जो ऐसे ऐसे भाव देखते हैं, जानते हैं, वे सब व्यवहार संज्ञाको प्राप्त होते हैं। तथा एक सामान्यसे समुच्चयसे व्यवहारका इतना अर्थ जानना, इतना ही व्यवहार जानना—"जिस भावका वस्तुसे अव्यापक-रूप संबंध है, व्याप्य–व्यापक एकमेक संबंध नहीं है, वह व्यवहार संज्ञाको प्राप्त होता है" ऐसा व्यवहार भावका कथन द्वादशांगमें प्रचलित है सो जानना। इति व्यवहारः।

* वचनपिंड भाषा वर्गणा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११) निश्चय लक्षण

जेसिं गुणाणं पचयं, णियसहावं च अभेवभावं च।
दव्व परिणमनाधीनं, तं णिच्छय भणियं ववहारेण ॥ ११ ॥

येषां गुणानां प्रचयं, निजस्वभावं च अभेदभावं च।
द्रव्य परिणमनाधीनं, तं निश्चयं भणितं व्यवहारेण ॥ ११ ॥

येषां गुणानां प्रचयं एक समूहं तं निश्चयं। पुनः येषां द्रव्य-गुण-पर्यायाणां निजस्वभावं निज जाति स्वरूपं तं निश्चयं। पुनः येषां द्रव्य-गुणानां गुणशक्ति पर्यायाणां यं अभेदभासं एक प्रकाशं तं निश्चयं। पुनर्येषां द्रव्याणां यं द्रव्य परिणमनाधीनं तस्य द्रव्यस्य परिणाम आश्रयं भावं तं निश्चयं, एतादृशं निश्चयं व्यवहारेण वचनद्वारेण भणितं वर्णितं।

अर्थः—जिन जिन अनन्त निज गुणोंका जो परस्पर एक ही समूह—पुंज वह निश्चयका रूप जानना। तथा निज निज द्रव्य-गुण-पर्यायोंकी जो निज केवल जातिस्वरूप वह भी निश्चयका रूप जानना। एक द्रव्यके अनन्त गुणोंका, एक गुणकी अनन्त शक्ति पर्यायोंका जो एक ही स्वरूप द्वारा भाव प्रगट होता है वह भी निश्चयभाव जानना। और जिस द्रव्यके परिणामोंके परिणमनके आधीन द्रव्यके भावका उसही द्रव्यके परिणामरूप परिणमना अन्य परिणामरूप न परिणमना सो निश्चय जानना। ऐसे ऐसे भावोंको वचन द्वारसे निश्चयसंज्ञा कही है।

भावार्थः—हे संत! जो ये निज निज अनंत गुण मिलकर एक पिंडभाव—एक संबंध हुआ, उसे गुणोंका पुंज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं। उस गुण पुंजका 'वस्तु' ऐसा नाम कहते हैं। सो यह वस्तुत्व नाम गुणोंके पुंजके बिना अन्य किसको कहना? इस गुण पुंजको वस्तु कहते हैं। इस वस्तुत्वकी निश्चय संज्ञा जानना।

जो जो जिस जिसरूप धारण किये हुए जो जो गुण उत्पन्न हुआ है, वह वह अपना अपना रूप धारण करता है। गुणका अन्य गुणोंसे अपना पृथक् रूप अनादि अनंत रहता है इस पृथक् रूपको निज जाति कहते हैं। आप ही आप अनादि निधन है। वह रूप किसी अन्य रूपसे नहीं मिलता। जो रूप वही गुण, जो गुण वही रूप ऐसा तादात्म्य लक्षण है। जो कोई इस रूपकी नास्ति चितवन करे तो उसने गुणकी नास्ति चितवन करी। ऐसा जो आप ही आप रूप है उस रूपको निज जातिस्वभाव कहते हैं। ऐसे निज रूपको निश्चय संज्ञा कहते हैं।

पुनः अनंत गुणोंका एक पुंज भाव देखना तथा भिन्न नहीं देखना, पुनः अनंत शक्तिवान् जो गुण है उस एक गुणको देखना, उन शक्तियोंको न देखना, तथा जघन्य उत्कृष्ट भेद न देखना, ऐसा जो अभेद दर्शन—एक ही रूपका दर्शन है उस अभेद दर्शनको भी निश्चय संज्ञा कहते हैं।

पुनः हे सन्त! गुणके पुंजमें कोई गुण तो नहीं है, यह तो निःसंदेह इसी प्रकार है। परन्तु वह भाव उन गुणोंका परिणाम धारण कर परिणमता है वह भाव इन गुण परिणामोंसे भिन्न नहीं है। उसी भावसे पूर्ण परिणमता है। वह कहाँ पाया जाता है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे पुद्गल वस्तुमें स्कंध कर्म विकार कोई गुण तो नहीं है, परन्तु इस पुद्गल वस्तुके परिणाम उस स्कंध कर्म विकारभावका स्वांग धारण किये हुए परिणमते हैं। अन्य द्रव्यके परिणाम इस कर्म विकारभावको धारण कर परिणमन करते हैं। यह एक पुद्गल ही निःसंदेह स्वांग धारण कर वर्तता है। पुनः इस जीव वस्तुके परिणाम रंजक, संकोच विस्तार, अज्ञान, मिथ्यादर्शन, अविरतादि चेतना विकारभाव हुए परिणमन करते हैं, सो ऐसा चेतन विकारभाव जानना। तथा (वे विकारभाव) उस चेतन-द्रव्यके परिणामोंमें तो पाये जाते हैं अचेतन द्रव्यके परिणामों-में तो कभी भी नहीं पाये जाते हैं यह निःसंदेह है। ऐसे विकारभाव अपने ही अपने द्रव्य परिणामोंमें ही होते हैं, उसी उसी द्रव्यके परिणाम आश्रित पाये जाते हैं, वह भी निश्चय संज्ञाको प्राप्त होते हैं। इति निश्चय।

चकारसे अन्य भी निश्चय भाव जानने। जितनी निज वस्तुकी परिमिति (सीमा) उतनी परिमितिमें ही द्रव्य-गुण-पर्याय, व्याप्य-व्यापक होकर वर्तता है उस वस्तुकी सीमाके बाहर नहीं। अपनी अपनी सत्तामें व्याप्य-व्यापक होकर अनादि अनंत रहते हैं। इसको भी निश्चय कहते हैं। तथा जो भाव जिस भावका प्रतिपक्षी वैरी-(शत्रुता) करता है, वह उसीसे वैर-(शत्रुता) करता है, अन्यसे नहीं करता है, वह भी निश्चय जानना। तथा जो प्रतिज्ञा करना, नियम करना, उसे भी निश्चय कहते हैं। तथा जो जिस कालमें जैसी जो होनी है, वैसी ही वह होती है, उसे भी निश्चय कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा जिस जिस भावकी जैसी जैसी रीतिसे प्रवर्त्तना है वैसी वैसी रीति प्राप्त होने पर परिणमता है उसे भी निश्चय कहते हैं। तथा एक आपका, स्वद्रव्यका, भी निश्चय नाम है। तथा एक है, एक रूप गुण मुख्य लेनें पर अन्य सर्व अनन्त निज गुणरूप, उस गुणरूपके भाव होते हैं।

भावार्थ—कथनमें तो एक भिन्न रूप लेकर कहते हैं, परन्तु वही एक गुणका रूप है. वही सर्व रसका (रूप) है तथा जो कोई इसी प्रकार मानता है—एक रूपमें अन्य

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥३२१॥

तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को सक्कइ चालेदुं इन्दो वा तह जिणिंदो वा ॥३२२॥

भावार्थ:—जो जिस जीवके, जिस देशमें, जिस कालमें, जिस विधानसे, जन्म तथा मरण उपलक्षणसे दुःख, सुख, रोग, दारिद्र आदि सर्वज्ञ देवने जाना है वह वैसे ही नियमसे होगा, वही उस प्राणीके, उसही देशमें, उसी कालमें, उसी विधान द्वारा नियमसे होता है, उसको इन्द्र तथा जिनेन्द्र, तीर्थंकरदेव कोई भी निवारण नहीं कर सकते हैं।

("स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्ष")

जो जो देखा वीतरागने, सो सो होसी वीरा रे।
बिन देखा होसी नहीं कोई काहे होत अधीरा रे ॥ १ ॥

समयो एक बढ़ै नहीं घटसी जो सुख दुखकी पीरा रे।
तू क्यों सोच करै मन कूड़ो, होय वज्र ज्यौं हीरा रे ॥ २ ॥

ब्रह्मविलास, परमार्थ पद पंक्ति, १२ वां राग माढ.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप नहीं है, एक ही है, वहाँ अनर्थ उत्पन्न होता है। जैसे एक ज्ञानगुण है, उस ज्ञानमें अन्य नहीं है, तो उस पुरुषने वह ज्ञानचेतनरहित, अस्तित्व, वस्तुत्व, जीवत्व, अमूर्त्तादि सर्व रहित माना। वह तो माना, परन्तु वह ज्ञानगुण कैसे रहा? किस रीतिसे रहा? वह न रहा। अतः यहाँ यह बात सिद्ध हुई कि जो एक एक गुण रूप है वह सर्वस्व रस है। इस प्रकार सर्वस्वरसको भी निश्चय कहते हैं।

तथा कोई द्रव्य किसी द्रव्यसे नहीं मिलता, कोई गुण किसी गुणसे नहीं मिलता, कोई पर्याय शक्ति किसी पर्याय शक्तिसे नहीं मिलती, इस प्रकार जो अमिश्रण—(पृथक्)भाव उसे भी निश्चय कहते हैं।

निश्चयको सामान्य अर्थसे इतना कहना—संक्षेपसे इतना ही अर्थ जानना—"निज वस्तुसे जो भावका व्याप्य-व्यापक एकमेक संबंध सो निश्चय जानना"। कर्त्ता भेदमें कर्म भेदमें भी, क्रिया भेदमें भी, इन तीन भेदोंमें एक ही भाव देखना, ये तीनों एक भावके उत्पन्न हुए, ऐसे एक भावको भी निश्चय कहते हैं। स्वभाव गुप्त है अथवा प्रगट परिणमता है परन्तु नास्ति तो नहीं है, ऐसे अस्तित्व-भावको निश्चय कहते हैं। ऐसे ऐसे भावोंको निश्चय संज्ञा जाननी, जिनागममें कहो है। इति निश्चय संपूर्णम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२) साक्षात् धर्म

गुण णिय सहावं खलु पज्जाय ससहाव दव्वं च ।
अप्पा किल परमप्प धम्मं, तं धम्मंवायं हि बोधव्वा ॥ १२ ॥

गुण निज स्वभावं खलु, पर्याय स्वस्वभावं द्रव्यं च ।
आत्मा किल परमात्म धर्मं तं धर्मवादं हि ज्ञातव्याः ॥ १२ ॥

खलु निश्चयेन आत्मा किल सर्वथा अनंतगुण निज-स्वभावं निजजातिस्वरूपं—यं यातं तं परमात्मधर्मं उत्कृष्ट केवल रूपं. पुनः आत्मा सर्वथा पर्याय स्वस्वभावं यं यातं तं परमात्मधर्मं उत्कृष्ट स्वभावं पुनः आत्मा सर्वथा स्व-भावद्रव्यं यं यातं तं परमात्मधर्मं उत्कृष्ट स्वभावंएतादृशं उत्कृष्टभावं तं जिनसमये धर्मवादं—स्वभावरूप कथनं—हि यथा स्यात्तथा ज्ञातव्याः ।

अर्थ—निश्चयसे आत्माके अनन्तगुण जब सर्वथा अपने निज जातिरूपको प्राप्त हुए तब आत्माको परम-स्वभाव कहते हैं । उसके द्वारा आत्माकी सर्वथा षट् गुणी हानि—वृद्धि पर्याय निज जातिरूप उत्पन्न हो तब आत्माको परमस्वभाव कहते हैं तथा जब जब आत्माका द्रव्य, प्रदेशोंमें निःप्रकंप निजस्वभावरूप सर्वथा उत्पन्न हुआ, तब उस आत्माको परमस्वभाव कहते हैं । ऐसे केवल—सर्वथा द्रव्य-गुण-पर्याय स्वभावरूपको ही प्राप्त हुए । ऐसा भावका कथन जिनागममें जानवा ।

भावार्थ—अनादिकालसे पुद्गल निमित्त प्राप्त होने पर इस आत्माके ज्ञाव. दर्शन, सम्यक्त्व, आत्माचरण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीर्य, आत्मभोगादिगुण: इस प्रकार अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, अवीर्य (निर्बल), पराचरण, परभोगादि विकाररूप परभावरूप हुए। फिर जैसे जैसे काललब्धि प्राप्त हुई, वैसे वैसे वह परभाव क्षय होता गया, स्वभाव प्रगट होता गया इस प्रकार होते होते जिस कालमें वह परभाव सर्वथा नष्ट हुआ, उसी समयमें सर्वथा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्यादि, अनंतगुण निजरूपसे केवल प्रगट हुए—सर्वथा अपने ही रूप हुए—अन्यथारूप नष्ट हो गया—सर्वथा साक्षात् गुणोंका निजरूप ही रहा, तथा कथंचित् अन्यका लगाव× गया, साक्षात् निज जातिरूप हुआ सो ऐसा आत्माके गुणोंका परमभाव जानना। तथा उसीकाल उनही साक्षात् गुणोंकी पर्याय परिणमन एक समय सूक्ष्ममें षट् गुणी हानि-वृद्धिसे स्वस्वरूप हुई; वह पर्याय साक्षात् केवलरूप उत्पन्न हुई। ऐसी षट्गुणी हानि-वृद्धि सूक्ष्मपर्यायके स्वस्वरूपको भी आत्माका परमभाव कहते हैं

तथा जीवद्रव्यके प्रदेशोंका कायादियोग पुद्गल-वर्गणाके उठने-बैठनेके निमित्तसे संकोच विस्ताररूप कंपन होता था, तथा जब कायादि पुद्गल वर्गणाओंका सर्वथा प्रकारसे अभाव हुआ, तब जीवद्रव्यके प्रदेशका वज्रवत् नि:प्रकंपस्वभाव सर्वथा साक्षात् हुआ, ऐसा भी आत्माका परमभाव जानना। ऐसे द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों सर्वथा साक्षात् परम स्वरूपरूप हुए, तब इस आत्माके केवल निजस्वभाव ही धर्म होता है एक सर्वथा निजजाति केवल

× लगाव = सम्बन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक स्वरूपरूप प्रवर्तना है, इस कारणसे इस आत्माका ऐसा ही धर्म कहते हैं। क्योंकि वहाँ उस कालमें निजही-रूप है, अन्य कुछ भाव नहीं है। अतः 'धर्म' ऐसा आत्मा कहा जाता है। सो ऐसा साक्षात् धर्मका कथन जिनागममें जानना ।। इति साक्षात् धर्मः ।।

(१३) बहिर्धर्म

जत्थ गुणविभावं सिय पज्जाय विभावं च दव्व विभावं च ।
अप्पा किल बहिधम्मं, पुणो तं अधम्मवायं णायव्वा ।। १३ ।।

यत्र गुण विभावं स्यात्, पर्याय विभावं च द्रव्यविभावं च ।
आत्मा किल बहिधर्मं पुनः तं अधर्मवादं ज्ञातव्यः ।। १३ ।।

यत्र यस्मिन् काले आत्मा गुणविभावं गुणविकारं यं किल सर्वथा स्यात् तं बहिधर्मं, पुनः आत्मा पर्याय विभावं यं किल सर्वथा स्यात् तं बहिःधर्मं पुनः आत्मा द्रव्य विभावं यं किल सर्वथा स्यात् तं बहिःधर्मं, एतादृशं बहिःधर्मं अधर्मवादं–अस्वभाववादं–परस्वभाव कथनं जिनागमे ज्ञातव्यः।

अर्थ—जिस कालमें आत्माके गुण सर्वथा परभावरूप होते हैं उसकालमें आत्माको बहिर्स्वभाव कहते हैं। जिस-कालमें आत्माकी पर्याय सर्वथा विकाररूप होती है उस-कालमें इस आत्माको बहिरधर्म कहते हैं। तथा जिस कालमें आत्माका द्रव्य× सर्वथा विकाररूप परिणमित होता

× सर्वथा विकाररूप अर्थात् मिथ्यात्वरूप–पराश्रयरूप अशुद्धदशा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है उस कालमें इस आत्माको बहिर्धर्म कहते हैं। ऐसा अधर्मका कथन जिनागममें जानना।

भावार्थ—अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, पराचरण, अवीर्य, पररस भोग इत्यादि जो गुणोंका विकारभाव है वह एक अक्षरके अनंतवें भाग विकार छोडकर अन्य सर्वथा विकाररूप हुआ, गुण सर्वथा उस विकारभावरूप होते हैं स्वभावरूप कुछ भी नहीं। ऐसे सर्वथा गुणके विभावको बहि:धर्म कहते हैं। तथा जो गुण ही सर्वथा विकाररूप हुए, तो उनके परिणाम, परिणमनभाव सहज ही सर्वथा विकाररूप हुए। जैसे पानी रंगा गया तो उसकी लहर रंगीन सहज ही हो गई। ऐसी विकार पर्याय स्थूल पर्याय है। वह विकार परिणमन इन्द्रियज्ञान द्वारा कुछ जाना जाता है। वह क्या है?

बहुत काल तक उस एक विकारभावके परिणमन प्रवाहित होते रहते हैं, वह स्थूल कालके प्रवाहसे जाना जाता है, ऐसी गुणोंकी सर्वथा विकार स्थूलपर्याय भी आत्माका बहिस्वभाव है। तथा जब गुण-पर्याय सर्वथा विकाररूप हुए, तब द्रव्य तो (उसी समय पर्याय अपेक्षा) स्वयं ही सर्वथा विकाररूप हुआ। जैसे सर्व तंतु रंगीन हुए तो वस्त्र सहज ही सर्वथा रंगीन हुआ। तंतुसे वस्त्र कहीं पृथक् नहीं था। तंतुओंके मिलापको ही वस्त्र कहते हैं। इस प्रकार द्रव्य सर्वथा विकारी हुआ तब उस आत्माको बहिर्भाव कहते हैं। ऐसे सर्वथा विकाररूप द्रव्य-गुण-पर्यायको आत्माका (विभावरूप अनित्यस्वभाव) बहि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव कहते हैं, क्योंकि अपनी वस्तुमें[१] कुछ भाव नहीं होता है, परन्तु[२] अन्य ही परभाव–विकारभाव–वस्तु समुदाय-से बाहरका ऊपरीभाव हुआ है अतः इसको बहिर्धर्म कहते हैं। तथा यह आत्मधर्म नहीं है अतः इसको आत्माका अधर्मभाव कहते हैं। इति बहिर्धर्मः ॥ १३ ॥

(१४) मिश्रधर्मकथन

गुण धम्माधम्मं परिणमदि, दव्व पज्जायं च धम्माधम्मं फुडं।
मिस्सधम्मं जया अप्पा, तं मिस्सधम्मं भणइ जिणो ॥ १४ ॥

गुण धर्माधर्मं परिणमति, द्रव्यं पर्यायं च धर्माधर्मं स्फुटं।
मिश्रधर्मं यदा आत्मानं मिश्रधर्मं भणंति जिनाः ॥ १४ ॥

यदा यस्मिन् काले स्फुटं प्रगटं आत्मा गुण धर्माधर्मं परिणमति, गुणस्वभाव (गुणस्वभावो) विभावं परिणमति यं तं मिश्रधर्मं विकार कलंक निजस्वभावं, पुनः तदा आत्म पर्यायं द्रव्यं धर्माधर्मं सहजेन आयातं तं मिश्रधर्मं एतादृशं मिश्रधर्मं जिनो भणति कथयति।

अर्थ—जिसकालमें आत्माके गुण धर्माधर्मरूप परि-णमते हैं, उस कालमें प्रगट आत्माको मिश्रधर्म कहते हैं तथा जब आत्माके गुण मिश्रधर्मरूप हों, तब आत्माके पर्याय

---

१ नित्य ऐसे वस्तुस्वभावमें अशुद्धता कैसी ?
२ अनित्य ऐसे पर्याय स्वभावमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यरूप तो सहज ही मिश्रधर्मरूप हुए; ऐसे आत्माके मिश्रधर्मको जिनेंद्रने प्रगट कहा है।

भावार्थ—जब निकट भव्य जीवको काललब्धि प्राप्त हुई तब जो पूर्वमें मिथ्यात्वरूप परभेष धारण किये हुए प्रवर्तन कर रहा था वह प्रवर्तन समाप्त हुआ–नष्ट हुआ। उसी कालमें निज स्वाभाविक स्वरूप द्वारा व्यक्तरूप प्रवर्तन हुआ। उस भव्य जीवको निजरूप क्या प्रगट हुआ? वह कहते हैं—

जीवका एक सम्यक्त्व गुण है। उस गुणका लक्षण आस्तिक्य अर्थात् प्रतीति–दृढ़ता–यह बात इसीप्रकार है, इसमें हलचल नहीं है, ऐसी आस्तिक्य शक्ति है। उस आस्तिक्य शक्तिके दो भाव होते हैं–एक निजजातिभाव और एक विकाररूप औपाधिक दोषरूप–अर्थात् निजजातिसे अन्य; ऐसा परभाव। उस आस्तिक्य शक्तिका अनादिसे निज जातिभाव तो गुप्त है। परभावका भेष प्रगट होकर आस्तिक्य शक्ति प्रवृत्त हुई। वह परभावरूप धारण करती है। आस्तिक्य शक्ति कैसी है?

जो भ्रम है, झूठ है, मिथ्या है, जो कुछ (प्रयोजन-भूत तत्त्वमें) मिथ्या बात है उनको ठीक मानवेरूप (मिथ्यात्वका) प्रवर्तन है उसीको (वह) आस्तिक्य कहते हैं। ऐसे परभावके अस्तित्व कहाँ तक रहता है कि–पुद्गलके कर्म विकारके* रहनेतक रहता है।

* यहाँ पुद्गलकर्मके विपाकके रहने तक परभावरूप रागादि क्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा इसी इसी प्रकार क्रम वर्तते हुए; पुद्गल विपाकके नास्तिकी [1]काललब्धि आई, तब पुद्गल विपाक नष्ट हुआ। तभी उसीकालमें आस्तिक्यशक्तिका जो परभावरूप

कहा? कि यह जीव स्वद्रव्यका आलम्बन पूर्णतया करे तो परभाव-रागादि नहीं होते, किन्तु रागादिमें तो परद्रव्यका ही आलम्बन होता है। यहाँ उपादान-निजशक्तिमें जब स्वाश्रय हुआ तबसे प्रकाश होते ही अंधकार उत्पन्न नहीं होता उसी दृष्टान्तवत् त्रैकालिक पूर्ण ज्ञानस्वभावका स्वामीत्व और आलम्बन करनें पर सर्वथा मिथ्यात्वका और भूमिकानुसार रागादिक उत्पन्न ही नहीं होता निमित्तका ज्ञान करानेमें ऐसा समझना कि—निज शुद्ध उपादान जागृत हुआ है तभी पुद्गल कर्म विपाकका अभाव हुआ और स्वाश्रयके बलसे हेय-उपादानको यथार्थ जाननेरूप निज परिणामकी प्राप्ति होती है।

१ यहाँ काललब्धिकी एक विवक्षा है, कार्तिकेयानुप्रेक्षामें प्रत्येक समय छहों द्रव्यकी काललब्धि कही है। जीवमें जब पात्रताकी पक्वता-भव्य भावका विपाक अर्थात् निजपरिणामोंकी प्राप्तिरूप सम्यक् पुरुषार्थ होता है उसी परिणामको अध्यात्मभाषामें स्वकाल स्वसन्मुख परिणाम अन्तरंग स्वकीय उपादान परिणामाधीनपना कहा है। देखो श्री रायचंद जैन शास्त्रमाला समयसार जयसेनाचार्य सं. टीका पृष्ठ ३१३ "धर्मलब्धिकाल; पृ. ३१८ गा. ७१ तथा" कालादिलब्धि वशेन भव्यत्वशक्तिर्व्यक्तिर्भवति तदा अयं जीवः सदा शुद्ध पारिणामिकभाव लक्षण निजपरमात्मद्रव्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरण पर्यायेण परिणमति। तच्च परिणमनमागमभाषयौपशमिक क्षायोपशमिक क्षायिक भावत्रय भण्यते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवर्तन था वह नष्ट हुआ। क्योंकि ज्यों ज्यों *पुद्गलके मिथ्यात्व विपाकका नाश हुआ, तैसे वह परभाव तो जोकि इस विपाकके रहनेसे होता था जब कि वह विपाक नष्ट हुआ तब इसका (परभावका) तो सहज ही नाश हो गया। तभी उसीकालमें आस्तिक्यशक्तिका परभाव इस प्रकार नष्ट हुआ। उसकालमें आस्तिक्यशक्तिका जो निजजातिभाव गुप्तरूप—शक्तिरूप हो रहा था, वही जातिभाव अतिशयकरि व्यक्त—प्रगट हुआ। उस जातिभावका कैसा रूप है ?

---

* जीवनें मिथ्याआस्तिक्यका स्वसन्मुखता द्वारा जिससमय नाश किया उसीसमय पुद्गल मिथ्यात्व विपाकका नाश हुआ है। देखो, समयसार गाथा २७७ जयसेनाचार्य संस्कृत टीका पृ. ३७० "यस्तु तादृशमात्मानमुपादेयं श्रद्धते तस्य सप्त प्रकृति उपशमादिकं विद्यते स तु भव्यो भवति'। 'पुद्गल मिथ्यात्व विपाकका नाश हुआ' कहा वह निमित्तका ज्ञान करानेकी विवक्षा है कारण कि पराश्रयकी श्रद्धासे ही पराश्रयी बननेसे ही परभाव-मिथ्यात्व होता था। नित्यस्वभाव भावके सच्चे आलम्बनसे तो विभाव होता ही नहीं।

(देखो समयसार गाथा. ११२ से ११६।)

* जीवके अशुद्धभावका व्यय होकर शुद्धताका उत्पाद हुआ वह जीवकी पर्याय है। जहां कर्मके विपाकका अस्तित्व रहना कहा है वह तो जड़ कर्मरूप पुद्गलकी पर्याय है अतः वह तो उसके उपादानसे होती है। प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय अपने अपने उपादानकारणसे होती है मिथ्यात्व रागादि होनेमें परद्रव्यका ही आलंबनरूप निमित्त कारण होनेसे जीवको परद्रव्य पुद्गल कर्मकी पर्यायके साथ स्बन्ध सहोदेपर परभावोंकी उत्पत्ति होती है इस विवक्षासे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो निजवस्तु जातिकी निश्चय वस्तु गुण-पर्यायोंका प्रत्यक्ष सत्तारूप तथा परद्रव्य-गुंण-पर्यायोंका भिन्न प्रत्यक्ष सत्तारूप यथार्थता ऐसा आस्तिक्यशक्तिका जातिभाव है वह नित्य ही है। ऐसी एक सम्यक्त्वगुणकी आस्तिक्य शक्ति निजरूप परिणमित हुई और उसीकालमें उस निकट भव्य जीवको एक ज्ञानगुण है, जिसका लक्षण 'जानना' है।

उस 'जानने'के भी दो भाव, एक तो वैभाविकरूप-विकाररूप-उपाधिरूप-परभाव, एक निज जातिरूप-अपने-रूप स्वभावभाव। जाननेका स्वभावभाव अनादिसे शक्तिरूप गुप्त हो रहा था तथा अन्य परभावरूप जानना व्यक्त-प्रगटरूप हो रहा था। सो परभाव धारण करते हुए कैसा जानना होता है ?

अवस्तुको वस्तु, अवगुणको गुण, अपर्यायको पर्याय, परको स्व, हेयको उपादेय इत्यादि जो कुछ वस्तुरूप नहीं है, मिथ्यामति (-मिथ्यादृष्टि) उसे ही जाननेको प्रवर्तता है।

'कर्मका विपाक रहे वहाँ तक परभावोंका रहना कहा है और यह कथन तो काल बतलाकर निज शुद्धात्माका आलम्बन करनेका समझानेके लिये कहा है। यदि एक द्रव्यकी पर्याय दूसरा द्रव्यकी पर्यायका सच्चा कारण हो तो द्रव्योंकी एकता हो जाय। कभी भी स्वतंत्र न हो किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। अतः हरेक द्रव्यकी पर्यायें अपने अपने स्वतंत्र कारणसे होती है तब बहिरंग उचित संयोगको निमित्त व्यवहार-उपचार कारण कहे जाते हैं। अतः जहां कर्मके विपाकके रहने तक जीवमें परभावका कथन है वह तो काल सूचक है भाव सूचक नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा जाननेका परभाव है, वह परभाव पुद्गल आवरणके विपाकके* रहनेसे रहता है इसी-इसीप्रकार अनादिसे प्रवर्तते हुए उस दुष्ट पुद्गल आवरणके कुछ विपाक उदयके नष्ट होनेका काल आया, उसके आनेसे (उस काललब्धिके समय) कुछ विपाक नष्ट हुआ, उससे वह जो दुष्ट–कुत्सित जाननेका परभाव था वह उसी कालमें नष्ट हुआ। तभी कुछ जाननेका निज जातिस्वभावभाव व्यक्त–प्रगटरूप परिणमित हुआ। (सम्यग्ज्ञान हुआ) वह कैसा प्रगट हुआ ?

जीवोंकी निज जाति वस्तु गुण–पर्यायोंकी सत्य प्रत्यक्ष स्वजाति जीव जानी (ज्ञात हुई), अथवा ज्ञायक जानी, अथवा दर्शन जानी, अथवा उपयोगमई जानी, चेतना जानी अथवा वेदक (अनुभवनरूप) जानी, अथवा बुद्ध जानी अथवा शांतमई जानी, ऐसी तो जीवकी निज-जाति नित्य जानी। तथा सर्व परभावोंकी–अन्य पांचद्रव्य–गुण–पर्यायोंकी सत्य प्रत्यक्ष अजीव जाति जानी, अथवा अज्ञायक जानी, अथवा अदर्शनमई जाति जानी, अथवा उपयोग रहित जाति जानी है, वा अचेतन जाति जानता है, ऐसी परभावोंकी नित्य जाति जानी (ज्ञात हुई है)।

तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल पांच वस्तुओंकी अजीव जाति ज्ञात हुई, तथा वस्तुभाव भिन्न ज्ञात हुआ, अवस्तुभाव भिन्न ज्ञात हुआ, यथार्थ भिन्न ज्ञात हुआ, आप जीव अपनी निज जाति सत्ता भिन्न जानता है, पर जीव–अजीव सत्ता भिन्न जानता है। मिथ्यात्व भिन्न जानता है, यथार्थ भिन्न जानता है, मिश्रार्थ भिन्न जानता

* देखो, फुटनोट पृष्ठ ३४ तथा ३६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, उस ज्ञानगुणकी निज जातिभाव शक्ति ऐसी सम्यक् परिणमित हुई—ऐसी प्रगट हुई। तथा उसी कालमें उस निकट भव्य जीवके एक चारित्रगुण भी है, उस चारित्र-गुणका लक्षण—आचरण—प्रवर्तन भी है।

उस आचरणके दो भाव हैं—एक तो विभावरूप—उपाधिरूप—विकाररूप परभाव, दूसरा निज जातिरूप—अपना-रूप—स्वभावरूप वह स्वभावभाव। आचरणका स्वभाव तो अनादिसे शक्तिरूप गुप्त हो रहा था तथा अन्य परभावरूप आचरण प्रगट हो प्रवृत्त हुआ। वह आचरण परभावको धारण करता है। (वह) कैसा प्रगट हुआ है ?

क्रोधरूप आचरण; मान, माया, लोभ आचरण, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, नपुंसक-वेद, पुरुषवेद आदिरूप आचरण। रंजक—(रागरूप) पुद्गल परभावोंमें चंचलरूप—विश्राम स्थितिरूप प्रवर्तन करना, वही परभावरूप आचरण है, ऐसा आचरण पररूप है। चारित्रमोह कर्मके [१]विपाकके अस्तित्वसे इसका अस्तित्व

---

१. कर्म विपाकके अस्तित्वसे इसके अस्तित्वका अर्थ—जीवके अशुद्ध भावका व्यय होकर शुद्धताका उत्पाद हुआ वह जीवकी पर्याय है। कर्मके विपाकका अस्तित्व रहना कहा है वह तो कर्मरूप पुद्गलकी पर्याय है अतः वह तो उसके उपादानसे है। प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय अपने अपने उपादानके कारणसे होती है। मिथ्यात्व रागादिविकार होनेमें पर द्रव्यका आलम्बन निमित्तकारण होनेसे जीवको पर द्रव्य—पुद्गलकर्मकी पर्यायके साथ संबंध होनेपर विकारकी उत्पत्ति होती है इस विवक्षासे कर्मका विपाक रहे वहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। तथा इसीप्रकार वर्तते वर्तते काललब्धि प्राप्त हुई, कुछ चारित्रमोह कर्मका विपाक नष्ट हुआ, तब वह कुत्सित आचरण परभावरूप भी नाश हुआ। अवादिसे आचरणका निज जातिरूप–स्वभावशक्तिरूप–स्वभावभाव शक्तिरूप गुप्त हो रहा था, तभी वह भाव कुछ व्यक्तरूप हो प्रगटरूप परिणमित हुआ। वह कैसा प्रगट हुआ ?

जो नित्य एक जातिरूप स्वजीव–वस्तुस्वभाव, वह निजस्वभाव वस्तुके मध्यमें स्थिररूपसे विश्राम–समाधि–स्थिति आचरण–प्रवर्तता हुआ परिणमित हुआ, केवल निज-वस्तु सुखका आस्वादन लेता हुआ परिणमित हुआ, ऐसा आचरण निज जातिरूप स्वभाव परिणमित हुआ, व्यक्त हुआ, उस कालमें भव्य जीवके ये तीनों मुख्य गुण इस प्रकार स्वभावभावरूप परिणमित हुए। अभेदसे वह वस्तु ही स्वभावरूप परिणमित हुई। यह वस्तुका निज जातिस्वभाव जो कुत्सित विपाकभाव वह रंगरहित दैदीप्यमान है, इस

तक परभावोंका अस्तित्व रहता है यह कथन है जो काल बतलाकर (जीवको विकारमें आश्रयरूप कारण बतलाना है तो जड़कर्म निमित्त है ऐसा बतलाकर) निज शुद्धात्माका आलम्बन करनेका समझावेके लिये कहा है। यदि एक द्रव्यकी पर्याय दूसरा द्रव्यकी पर्यायका सच्चा कारण हो तो दो द्रव्यकी एकता हो जाय किन्तु ऐसा कभी नहीं होता। अतः हरेक द्रव्यकी पर्याय अपने अपने स्वतंत्र कारणसे होती है कर्मके विकारके रहने तक जीवमें विकार यह तो निमित्तका कथन है जो कालसूचक है भावसूचक नहीं है। (पृष्ठ ३८ में भी यह फुटनोट समझना)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण इसको वीतरागभाव कहते हैं। तथा वह परभाव पुद्गल विपाक रंगभावना पडत्थदा (प्रतिध्वनी) से व्याप्त है। वह पुद्गल रंग पड़त्थदा (प्रतिध्वनी) विनाश होनेसे कुछ भी नहीं है। अतः जैसे जैसे जब तक पुद्गल विपाक-भाव काल प्राप्त होने पर प्रगट होता है उसी उसीके अनुसार पुद्गल विपाककी जातिके अनुरूप इस चित् पर-भावके रूपकी जाति होती है। तथा पुद्गल विपाककी भांति जिस जातिका नाश होता है, उस उस जातिका चित् परभावका भी नाश होता ही है। तात्पर्य यह है उस पुद्गल विपाकके अस्तित्वसे इस परभावका अस्तित्व है और उस पुद्गल कर्म विपाककी जैसी जैसी कम अधिक अस्ति–नास्ति जाननी, वैसी वैसी परभावकी कम अधिक अस्ति–नास्ति जाननी, अतः परभावका अस्तित्व पुद्गलकर्म विपाकके आधीन है। तथा इस कारणसे केवल पुद्गलकर्म विपाक रंगकी जाति समान इस परभावकी जाति है इसलिये परभाव सरागमय हैं। तथा वह निज जाति जीव वस्तु स्वभावभाव निज वस्तु सत्ताके आधीन है। वह स्वयं ही वस्तुभाव है। वही पुद्गलकर्म विपाकके नाशसे स्वभाव-भावका प्रवर्त्तना–प्रगट होना है। अतः स्वभावभाव पुद्गल-कर्म विपाक रंगसे सहज ही रहित है जिस कारणसे स्वभावको एक वीतराग नाम भी प्राप्त हुआ, सो निकट भव्यको प्रगट परिणमित स्वभावभाव है।

भावार्थ—जिसप्रकार अनादिसे जीवकी परिणति अशुद्ध ही रही है उसीप्रकार कहते हैं अनादिसे पुद्गल तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवकी चित् विकार परिणति होनेको निमित्त हुआ। फिर वही चित् विकार परिणति परिणमित होती हुई उस पुद्गलको कर्मत्व परिणाम होनेको निमित्त होती है। इस-प्रकार अनादिसे परस्पर निमित्त–नैमित्तिक हो रहे हैं। सो यहाँ जीवकी परिणतिका व्याख्यान करते हैं:–

जब यह पुद्गल सहज ही अपनी द्रव्यशक्तिसे कर्मत्व उदय परिणतिरूप परिणमित हुआ, तभी उस पुद्गल कर्मत्व उदय परिणतिरूप परिणमनका निमित्त पा करके यह जीव स्वयं चित् विकाररूप हो करके परिणमता है। जैसे प्रातःकाल सूर्यका उदय होनेपर लोक स्वयं ही स्नान वाणिज्य आदि कार्य करते हैं, वैसे ही पुद्गलकर्मकी उदय परिणति प्राप्त होनेपर जीव स्वयं ही विकाररूप परिणमित होता है। कोई जानेगा कि पुद्गल जीवको विकाररूप परिणमाता है, सो इस प्रकार तो कभी भी नहीं होता (नहीं बनता)। अन्य द्रव्य अन्य द्रव्यकी परिणतिका कर्त्ता नहीं होता। तथा कोई इसप्रकार जानेगा कि चित् विकाररूप तो जीव परिणमता है परन्तु यह पुद्गल उसके परिणमनके लिये स्वयं निमित्तका कर्त्ता होता है।

परभावका कर्तृत्व माननेमें दोष

जब यह जीव विकाररूप परिणमित हो, उसके लिये यह पुद्गल स्वयं निमित्तका कर्त्ता होकर प्रवर्तन करे, सो इस प्रकार तो कभी भी नहीं होता। यदि यह पुद्गल उस चित् विकारके होनेके लिये जानजानकर स्वयं कर्म निमित्त-रूप होता है तो पुद्गल ज्ञानवंत हुआ तब अवर्थ उत्पन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ। जो अचेतन था वह चेतन हुआ, एक तो यह दूषण है। दूसरे पुद्गलकर्मकी कर्मत्व विभावता पुद्गलके आधीन होगी, पुद्गल स्वाधीन आपने आप कर्म विभावोंका कर्त्ता हो जायगा, निमित्त प्राप्त होनेपर कर्मका कर्त्ता नहीं होगा, तब विभाव कर्मत्व पुद्गलका स्वभाव होगा, यह दूसरा दूषण है।

तथा तीसरा दूषण यह होगा कि जो पुद्गल जीवको विकाररूप होनेके लिये कर्मपने द्वारा निमित्तरूप हुआ करे तो यद्यपि कोई द्रव्य किसी द्रव्यका शत्रु नहीं है परन्तु यहाँ तो पुद्गल जीवका शत्रु हुआ। यह तीसरा दूषण है।

और जो कोई इस प्रकार कहे कि जीव तो विकार-रूप परिणमित नहीं होता, पुद्गल ही अनेक प्रकार स्वयं ही कर्मत्वरूप हुआ परिणमता है, सो इस प्रकार तो कभी भी नहीं होगा, क्यों ?

यदि पुद्गल विकाररूप परिणमता है तो परिणमो परन्तु जीवको संसार मुक्ति होना तो न ठहरा। ज्ञानी अज्ञानी हुआ, वह कोई अन्य दशा हुई सो तो अनर्थदशा—वह अन्य दशा तो नहीं दिखाई देती है तथा जीवके संसार, मुक्त परिणाम तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, अतः जीवको तो विकार होना ठहरा।

अब यदि कोई इसप्रकार कहता है कि जीव चित् विकाररूप स्वयं तो नहीं परिणमित होता परन्तु पुद्गलसे व्याप्य-व्यापकरूप होकर परिणमित होता है तो इसप्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो नहीं है क्योंकि कोई द्रव्य किसी द्रव्यसे व्याप्य-व्यापक नहीं होता। जो होवे, तो चेतनद्रव्यका नाश हो जावे, यह कहनेका भाव है।

तथा, यदि कोई इस प्रकार कहता है कि पुद्गल सहकारी–निमित्त कुछ नहीं, जीव स्वयंको स्वयं ही निमित्त होकर स्वयं ही चित् विकाररूप परिणमित होता है, सो इस प्रकार तो नहीं है, क्यों ?

यदि पुद्गल कर्मत्व सहकारी निमित्त बिना ही जीव चित्विकाररूप परिणमता है तो यह चित्विकार जीवका निजस्वभावभाव हो जावे, स्वाधीन शक्ति हो जावे, निर्विकार निजस्वभाव चेतनाका नाश हो जावे, यह अनर्थ होता है।

तथा यदि कोई इस प्रकार कहे कि पुद्गलके कर्मत्व विकार होनेके लिये जीव चित्विकाररूप परिणमता है, सो इस प्रकार तो नहीं है, क्यों ? कोई द्रव्य किसी द्रव्यका शत्रु नहीं है। इस प्रकार निषेध है।

तथा यदि कोई इसप्रकार कहे—जीव पुद्गल दोनों मिलकर एक अशुद्ध विकार परिणति उत्पन्न हुई है सो इसप्रकार भी नहीं है। क्योंकि दो द्रव्य मिलकर एक परिणतिरूप नहीं होते ऐसा माननेसे दो द्रव्योंमेंसे कोई द्रव्य निःपरिणामी (परिणाम रहितका) हो परन्तु यहाँ तो सर्व द्रव्य निज परिणामो हैं, चेतनके चेतन परिणाम, अचेतनके अचेतन परिणाम। इसप्रकार दोनों मिलकर एक अशुद्ध परिणति माननेका निषेध हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब जिसप्रकार इन दोनों विकारकी उत्पत्तिका रूप है उसीप्रकार कहते हैं–पुद्गल कर्मत्व विकार होनेकी ऐसी कथा है:—

इस त्रिलोकमें कार्माण जातिकी वर्गणा (स्कंध) भरो हैं। जब जिस जीवके जैसी-जैसी जातिका मंद, तीव्र चित्‌विकार रागभाव होता है उसी कालमें उसी जीवका राग चिकनाईका निमित्त पाकर यथायोग्य कर्मवर्गणा उसी जीवके समीप आकाश प्रदेशोंमें पुद्गलवर्गणा उस जीवके प्रदेशोंसे एकक्षेत्रावगाहरूप चिपकती हैं अथवा बँधती हैं, इसप्रकार बँधकर वही कर्मवर्गणा निजनिज कर्मत्व कार्यमें व्यक्त होकर परिणमित होती है, उदयरूप होती है, ऐसा चित्‌विकार राग कर्मवर्गणाको कर्मत्व व्यक्तरूप अनेक प्रकार परिणमनको निमित्तमात्र है जैसे दृष्टांत—

जैसे किसी पुरुषके शरीरमें तेल लगा है, उसी तेलका कारण पाकर अन्य धूलि मल उस तेलसे बंधकर धूलि व्यक्तपने मैलरूप परिणमती है तो भी वह पुरुष उस मैलसे मैला होता है यहाँ ऐसा इतना ही द्रव्यकर्मत्व होनेमें राग निमित्तका भाव जानना।

अब विकारकी उत्पत्ति कहते हैं—

उसी जीवसे एक क्षेत्रावगाह होकर जो कर्मवर्गणा चिपकी थी वे सहज आप ही काललब्धि प्राप्त होनेपर कर्मत्व व्यक्त परिणामरूप होकर परिणमती हैं। तभी उसी कालमें उन वर्गणाओंका व्यक्त कर्मत्व उदय निमित्तमात्र प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनेपर यह जीव चित्‌विकारभावरूप प्रगट हो परिणमता है। इति सामान्य निरूपण।

तथा यहाँ एक संक्षेपसा दृष्टांत जानना—जैसे एक बिल्ली और लोटन नाम जड़ी है। उस जड़ीकी जैसी वासना है वैसी वासनारूप जड़ी अकारण सहज ही अपने आप प्रगट है ऐसी जड़ीकी वासनाका निमित्तमात्र इतना ही प्राप्त होनेपर सयानी (चतुर) अपनी गतियोंमें प्रवीण बिल्ली उस जड़ीकी वासनामें अपनी सर्व सूरत रंजती धरी (रंजनारूप परिणामको धारण करती हुई) अपनी चेष्टाकी सूरत (रूप) विसरि गई (भूल गई)। तब उस बिल्लीके क्या विकार उत्पन्न होता है ? वह बिल्ली उसी जड़ीको तो जाना करती है और उसी जड़ीको देखा करती है, फिर भी उसी जड़ीसे मन विरक्त नहीं होता है, उसमें रंजायमान हुआ करती है; इस प्रकार होती हुई बिल्ली उस जड़ीके आगे लोट्‌या करती है। जिसप्रकार इस जड़ीकी वासनाका निमित्त-मात्र इतना ही प्राप्त होनेपर बिल्ली लोटनेकी क्रिया करती है उसीप्रकार कर्मवर्गणाका कर्मत्व व्यक्त परिणतिका निमित्त-मात्र इतना ही प्राप्त होनेपर यह जीव स्वयं ही चित्‌विकार-को क्रियाको करता है। इति सामान्य दृष्टांत दार्ष्टांत।

चित्‌विकार वर्णन

जो एक क्षेत्रावगाही वर्गणा है, वे ही वर्गणा जिस कालमें कर्मत्वरूप व्यक्त होकर आप ही आकाररूप होकर धारा प्रवाहरूप परिणतिसे परिणमित होती हैं तभी उसी कालमें उस पुद्‌गल कर्मत्व व्यक्त प्रवाह—परिणाम—परिणतिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्तमात्र इतना ही प्राप्त होनेपर यह जीव वस्त्वंतर (वस्तु+अंतर) होता है, सो क्या ?

इस जीवमें स्वरूपाचरणरूप स्वयंमें ही विश्राम लेनेके भावरूप निज परिणतिकी धारा उत्पन्न नहीं होती, और कर्ममल व्यक्त परिणाम—प्रवाह परिणतिमें, पराचरण-रूप—परहीमें विश्राम लेनेके भावरूप पर परिणतिकी प्रवाह—धारा उत्पन्न होती है। उसी परकर्म परकर्मत्व व्यक्तधारामें रंजक—रागरूप—जीव पर विश्राम धारा प्रवाहसे प्रवृत्त हुआ, स्वयंमें विश्राम लेना छूट गया, पुद्गलमें अस्पर्श विश्राम भाव किया, उसका नाम वस्त्वंतर है। ऐसा जब जीव स्वयं ही वस्त्वंतर हुआ तब यह जीव ऐसे विकाररूप स्वयं ही धारारूप परिणमता है। क्या विकार उत्पन्न हुआ ?

इस जीवका ज्ञानगुण तो अज्ञानरूप प्रवाहरूप परिणमित हुआ। वह अज्ञान विकार कैसा है ? क्रोध, मान, माया, लोभ, इंद्रिय, मन, वचन, देह, गति, कर्म, नोकर्म, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और अन्य जीव इस-प्रकार जितनी भी परवस्तु हैं, उतनेको आपरूप जानता है, "ये हैं सो मैं ही हूं, मैं इनका कर्ता हूं, ये सर्व मेरे कार्य हैं, मैं हूं सो ये हैं, ये हैं सो मैं ही हूं," इस प्रकार परवस्तुको जो आप जाने, आपको पर जानता है। तब लोकालोक जाननेकी सर्वशक्ति अज्ञानभावरूप परिणमित हुई है सो जीवके ज्ञानगुणको अज्ञान विकार उत्पन्न हुआ।

तथा इसीप्रकार जीवका दर्शनगुण था वह भी जितने परवस्तुके भेद हैं उतने भेदोंको आपरूप ही देखता है। 'यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है सो मैं ही हूं' इस प्रकार आपको पर देखता है। लोकालोक देखनेकी जितनी शक्ति थी; उतनी सर्वशक्ति अदर्शन रूप हो गई, इसप्रकार जीवका दर्शनगुण विकाररूप परिणमित हुआ।

तथा जीवका सम्यक्त्वगुण था वह जीवोंके भेदोंको अजीवरूप श्रद्धा करता है, अजीवके भेदोंको जीवरूप श्रद्धा करता है। चेतनको अचेतन, विभावको स्वभाव, द्रव्यको अद्रव्य, गुणको अवगुण, ज्ञानको ज्ञेय, ज्ञेयको ज्ञान, स्वको पर, परको स्व, इसीप्रकार अन्य सर्व विपरीत ही आस्तिक्य-श्रद्धा करता है। इसप्रकार जीवका सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्व-रूप--विकाररूप परिणमित हुआ।

तथा जीवका स्वआचरण गुण था वह जितनी भी परवस्तु हैं उन परको स्वआचरण किया करता है, परमें ही तिष्ठा करता है, परहीको ग्रहण करता है। अपनी चारित्रगुणकी सर्वशक्ति परमें ही लग रही है। इस प्रकार जीवका स्वचारित्रगुण विकाररूप हो परिणमता है।

तथा इस जीवका सर्वस्वरूप परिणमित होनेका बलरूप सर्व वीर्य गुण था, वह भी सर्व वीर्यशक्ति अत्यन्त निर्बलरूप हो परिणमित हुआ। स्वरूप परिणमनका बल प्रगट नहीं हुआ, पररूप निर्बल हो परिणमित हुआ। इस-प्रकार जीवका वीर्यगुण विकाररूप हुआ।

तथा इस जीवका आत्मस्वरूपरूप रस जो परमानन्द भोगगुण था, वह पर पुद्गलका कर्मत्व व्यक्त साता-असाता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुण्य-पापरूप—उदय परपरिणामोंके विविध चित्‌विकार परिणामोंका रस भोगता रहता है रस लिया करता है। उस परमानन्दगुणकी सर्वशक्ति परंपरिणामोंका स्वाद सो परस्वाद परम दुःखरूप है। इसप्रकार जीवका परमानन्दगुण दुःख विकाररूप परिणमित हुआ। इसीप्रकार इस जीवके अन्य गुण जैसे-जैसे विपरीत विकाररूप हुए हैं सो अन्य ग्रंथोंसे जान लेना।

इस जीवके सर्वगुणोंमें विकारको चित्‌विकार नाम संक्षेपसे कहते हैं। इसप्रकार यह जीव एक क्षेत्रावगाही कर्मवर्गणाओंसे व्यक्त जो कर्म उदय परिणतिका निमित्तमात्र प्राप्त होनेपर आप ही वस्त्वंतर हुआ। वस्त्वंतर होनेसे आप ही चित्‌विकाररूप, धाराप्रवाहरूप होकर उस बिल्लीकी भाँति इस त्रिलोकमें यह जीव नाचता फिरता है।

प्रश्नः—ऐसे चित्‌विकाररूप तो जीव आप ही परिणमित होता है, परन्तु इस एक क्षेत्रावगाही कर्मत्व उदयका निमित्तमात्र प्राप्त होनेपर विकाररूप हो, सो इतने निमित्तमात्रसे क्या है?

उत्तर—इतने निमित्तसे यह है कि जीवका इतना विकारभाव अनित्य स्थापित किया, विकारकी अनित्यता जड़ (निश्चत) हुई, विकार अवस्तु भाव ठहरा; विकार विकार ही ठहरा, स्वभाव न ठहरा। क्योंकि जिस काल उस कर्मत्व[1] व्यक्त उदय परिणतिकी स्थिरता है—जैसा उसका

१. कर्मत्व व्यक्त उदयका अभिप्राय पुद्गलकधंके उदयके साथ जीवकी परिणतिका जुडान अर्थात् सम्बन्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्तित्व है—तब यह जीव भी चित्विकारका कर्त्ता होता है। तथा जिस काल वही एक क्षेत्रावगाही कर्मवर्गणा कर्मत्वरूप नहीं हुई, सहज ही उसीकाल इस जीवने भी चित्विकाररूप भाव नहीं किया। इस चित्विकारको उस कर्मत्वका निमित्त इतना कारण है। इस चित्विकारका अस्तित्व केवल उस कर्मत्व व्यक्त उदयके अस्तित्वसे है। वह जाता है तो यह चित्विकार भी जाता है इसलिये इस विकारको अनित्यपना ठहरा। तथा यह स्वाधीन वस्तु स्वभाव न ठहरा तथा प्रत्यक्ष विकार, विकार ही ठहरा। क्योंकि स्वभावकी नास्ति तो तब हो, जब इस जीववस्तुका नाश हो जाय, परन्तु वस्तुका कभी भी नाश नहीं है, अतः वस्तुत्वस्वभावभाव आप ही नित्य ठहरा। इस स्वभावभावका अस्तित्व निज वस्तुत्वके अस्तित्वसे है इस कारण यह स्वभावभाव निजजाति स्वभाव ही ठहरा, सो केवल स्वयं वस्तु ही ठहरी।

तथा इस विकारका अस्तित्व परके अस्तित्वसे है, (परके अवलम्बनसे है।) इस कारण यह अनित्य है इसका अस्तित्व पराधीन ठहरा। तथा जब यह विकारभाव मिट जाता है, तब वह वस्तु तो जैसीकी तैसी ही रह जाती है, इस कारणसे प्रत्यक्ष जाना जाता है कि यह वस्तुका वस्तु-स्वभाव नहीं है। यह भाव इस वस्तुमें ऊपरी हैं, अन्य ही जैसा है। अतः जो अन्य जैसा ही भाव आता है, वह विकारभाव स्वयंको प्रत्यक्ष विकाररूप ही दिखलाता है, "मैं इस वस्तुका वस्तुस्वभाव नहीं, कि मैं इस वस्तुमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपाधि हूं," इस प्रकार आता हुआ वह विकारभाव प्रत्यक्ष दिखलाता है।

तथा जो कोई इस प्रकार प्रश्न करे, जब वस्तु विकार-रूप प्रगट होती है, उस कालमें स्वभावभावका क्या होता है? नाश हो जाता है कि रहता है? उसका उत्तर- स्वभावभाव गुप्तरूप रहता है।

भावार्थ—यह स्वभावभाव तो प्रगट परिणमनरूप हो, तो यह नष्ट नहीं हुआ है, परन्तु जो वस्तु है वह वस्तुस्वभावभाव तो आप स्वयं ही है। उस विकारके जाते ही व्यक्त परिणाम भावरूप होना सरल है। जैसे वह बिल्ली है तो उसका स्वभावभाव भी नहीं गया है (नष्ट नहीं हुआ है।) क्योंकि जिसकाल जड़ीका निमित्त जाता है, निमित्तके जाते ही उस बिल्लीका लोटनेरूप विकार जाता है, तभी उस बिल्लीके निज जातिस्वभाव प्रगट होता है। तथा जो लोटते हुए बिल्लीपना मिट गया होता तो वह बिल्लीका स्वभाव कहाँसे प्रगट होता? न होता। इस कारण लोटते हुए बिल्लीपना नहीं जाता है, बिल्लीपना तो रहता है। जैसे बिल्लीपना रहता है, वैसे स्वभावभाव स्वयं ही रहता है। तथा जो रहता है तो व्यक्तरूप होना सरल है। इति तात्पर्य।

इसप्रकार अनादिसे इस जीवने चित्‌विकाररूप होकर भ्रमण किया, अनेक-अनेक विकारभावरूप नृत्य किया। नृत्य करते करते जब अनन्तकाल व्यतीत हुआ, तब किसी भव्य जीवको वस्तुस्वभावभाव प्रगट परिणामभाव होनेकी काल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लब्धि प्राप्त हुई। वह संसारी जीव कैसा है? संज्ञी पंचेन्द्रिय है। ऐसे जीवके काललब्धि आने पर स्वभाव परिणाम जैसे प्रगट होता है, वह रीति कहते हैं—

पौद्गलिक दर्शनमोहकी तीन प्रकृति मिथ्यात्व, मिश्र-मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व इन तीन प्रकृतियोंका मूलसे ही विनाश (क्षय) हुआ, अथवा उपशम हुआ, अथवा क्षयोपशम हुआ, अथवा दो प्रकृतियोंका तो क्षयोपशम हुआ और एक सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्वका उदय है, इस प्रकार तो पौद्गलिक दर्शनमोहकी अवस्था हो गई। तथा उसीकालमें पौद्गलिक चारित्रमोहकी अनंतानुबंधी चौकड़ीका मूलसे नाश हुआ अथवा उपशम अथवा क्षयोपशम हुआ, इस प्रकार अनंतानुबंधीकी अवस्था हो गई तथा ज्ञाना-वरणीय, दर्शनावरणीय, अंतराय, वेदनीय—इन चारों पौद्गलिक कर्मोंके संक्षेपसे कितने ही कर्मअंश क्षयोपशम हुए, सो वह क्षयोपशम कैसा जानना?

कर्मअंशोंके उदयरूप होनेका अभाव (—नाश) होना क्षय है। तथा उन कर्मअंशोंके सत्ताभावका सत्ता उपशम है। इन अंशोंकी दशा ऐसे क्षयोपशमरूप हुई, इस प्रकार इन पुद्गलकर्मोंके नष्ट होते ही उसीकालमें चित्‌विकार भी सहज ही नष्ट हो जाता है।

कोई यहाँ प्रश्न पूछता है कि चित्‌विकारके मिटते ही पुद्गलकर्मका नाश क्यों नहीं कहते हैं? उसका उत्तर—इस चित्‌विकारकी स्थिति पुद्गल कर्मकी स्थितिके आधीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, पुद्गलकर्मकी स्थिति चित्‌विकारकी स्थितिके आधीन नहीं। इस पुद्गल कर्मकी स्थिति कालद्रव्यके आधीन है, जितने काल तक जिन जिन पुद्गलद्रव्योंको जिस जीवके संग कर्मत्वरूप परिणमना है, उतने ही काल तक कर्मत्व स्थिति रहती है। उस कर्मत्व परिणमनके कालकी जब मर्यादा पूर्ण होती है, तभी पुद्गलकर्मत्व परिणमनकी स्थिति समाप्त हो जाती है अतः कालकी मर्यादा पूर्ण होनेपर पुद्गल कर्मत्व स्थिति समाप्त होती है। उस पुद्गल कर्मत्व स्थितिके समाप्त होते ही चित्‌विकारकी स्थिति समाप्त हो जाती है। अतः पुद्गल कर्मत्व परिणमनेकी स्थिति समाप्त हुई, इस प्रकार चित्‌विकार नष्ट हो गया। जीवके जब वह चित्‌विकार नष्ट हो जाता है, तब जीवका निज-जाति वस्तुस्वभाव जैसा था, वैसा ही परिणामरूप व्यक्त हो प्रवाहको प्राप्त होता है। उसे कहते हैं—

अनादिसे जीवका जो स्वभाव आचरणभाव राग, मोह रूप होकर सर्व पर पुद्गलोंमें आत्मा मानकर तिष्ठा था, वही स्वरूपाचरणरूप हुआ। कितना ही (भाव) निज वस्तुमें ही मग्न हुआ, स्थिरीभूत उत्पन्न हुआ। इति सामान्य कथन।

विशेष रूपसे दर्शनमोह पुद्गलकी स्थिति जब ही नष्ट हुई, तभी इस जीवका जो स्वसम्यक्त्वगुण मिथ्यात्वरूप परिणमित हुआ था, वही सम्यक्त्वगुण सम्पूर्ण स्वभावरूप हो परिणमित हुआ, प्रगट हुआ। चेतनवस्तु द्रव्य, गुण, पर्याय जीव वस्तु जातिकी भिन्न आस्तिक्यता—टंकोत्कीर्ण प्रतीति;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अचेतन वस्तु द्रव्य, गुण, पर्याय, अजीव वस्तु जातिकी आस्तिक्य टंकोत्कीर्ण भिन्न प्रतीति, सो ऐसा सर्वांग सम्यक्त्व-गुण निजजाति स्वरूप हो परिणमित हुआ—प्रगट हुआ।

उसी कालमें वह ज्ञानगुण अनंत शक्तियोंसे विकाररूप अनादिसे हो रहा था, उस ज्ञानगुणकी उन अनंतशक्तियोंमेंसे कितनी ही शक्तियाँ चेतन निजजाति वस्तुस्वरूप स्वज्ञेय जाननेको प्रत्यक्ष निजरूप होकर सर्व असंख्यात जीव प्रदेशोंमें प्रगट हुई। उसका सामान्यसे नाम 'भावमति श्रुत' नाम कहते हैं, अथवा निश्चय श्रुतज्ञानपर्याय कहते हैं, अथवा ज्ञानी कहते हैं, श्रुतकेवली कहते हैं, या एकदेश प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, या स्वसंवेदनज्ञान कहते हैं अथवा जघन्यज्ञान कहते हैं। इनके अतिरिक्त सर्व ज्ञान शक्तियाँ अज्ञान विकार-रूप प्राप्त होती हैं। इन सर्व विकारशक्तियोंका सामान्य नाम कर्मधारा कहते हैं। इस प्रकार उस सम्यक्त्वगुण स्वरूप परिणमनके कालमें ज्ञानगुणकी अनंत शक्तियोंमेंसे कितनी ही स्वरूप रूपको प्राप्त हुई।

तथा उसीकालमें जीवके दर्शनगुणकी अनादिसे अदर्शन विकाररूप अनंतशक्तियाँ हो रही थीं वे भी कितनी ही शक्तियाँ दर्शन निज जाति स्वस्वरूप होकर असंख्यात जीव प्रदेशोंमें प्रत्यक्ष प्रगट हुईं। और जिस प्रकार ज्ञानकी शक्ति प्रत्यक्ष होनेकी रचना कही थी उसीप्रकार दर्शन-गुणकी कितनी ही (शक्तियाँ) प्रत्यक्ष होनेकी रचना हुई। तथा जिस प्रकार ज्ञानकी शक्ति कर्मधारारूप कही उसीप्रकार दर्शनगुणकी कितनी ही शक्तियाँ प्रत्यक्ष होनेकी रचना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर अन्य शक्तियाँ कर्मधारारूप प्रवाहित होती हैं।

उसीकालमें जीवके स्वचारित्रगुणकी अनंत शक्तियाँ अनादिसे पराचरणरूप द्वारा रागरूप हो रही थी, उन अनंत आचरण शक्तियोंमेंसे कितनी ही आचरण शक्तियाँ वीतराग निजजाति होकर निज वस्तुस्वस्वरूपमें, स्थिररूप–विश्रामरूप–प्रगट हुई। निज वस्तुस्वरूप आचरण क्रिया, स्थिरता प्राप्त की तथा श्रुतकेवली जीवके अबुद्धिरूप जो चारित्रगुणकी कितनी ही शक्तियाँ हो रही हैं, वे चारित्रकी शक्तियाँ रागरूप हैं। जहाँ राग वहाँ बंधन है। अतः श्रुतकेवलीके बुद्धिरूप–चारित्रगुण शक्तियाँसे आस्रव बंध नहीं है। अबुद्धिरूप चारित्र राग शक्तियोंसे सूक्ष्म आस्रव बंध होता है। इस प्रकार जघन्य ज्ञानीको स्वचारित्रगुणकी कितनी ही शक्तियाँ सर्व जीव प्रदेश निजवस्तुमें वीतराग होकर स्थिरीभूत विश्रामको प्राप्त हुईं तथा चारित्रकी रागरूप (शक्तियाँ) अबुद्धि विकाररूप प्रवर्तंती हैं।

तथा उसीकालमें इस जीवके एक स्वपरमानन्दभोग गुणकी अनंतशक्ति चित्विकाररूप, पुण्य, पाप, दुःख भोगरूप अनादिसे प्रवर्तंती थीं, उनमेंसे कितनी ही शक्तियाँ स्वपरमानन्दरूप हो सुख भोगरूप प्रवृत्त हुई हैं। जितनी चारित्रगुणकी शक्तियाँ स्वआचरण स्थिररूप प्रवृत्त हुई, उतनी शक्तियाँ परमानन्द भोगगुणके स्वसुखभोगरूप प्रगट हुई और शक्तिरूप प्रत्यगात्माका भोगरूप प्रवर्तंती हैं। अन्य शक्तियां पुण्य-पाप भोगरूप प्रवर्तंती हैं।

तथा उसीकालमें इस जीवके वीर्य (बल) गुणकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व शक्ति अनादिसे स्वरूप परिणमनके लिये निर्बल हो रही थीं। उनमेंसे कितनी ही शक्तियाँ निजस्वरूप प्रगट होनेको बलवान होकर प्रवृत्त हुई। सम्यक्त्वगुण और ज्ञानगुणकी जितनी शक्ति, दर्शनगुणकी जितनी शक्ति, चारित्रगुणकी जितनी शक्ति, परमानन्दगुणकी जितनी शक्ति, जितनी परमार्थस्वरूप होकर प्रवृत्त हुई, उतनी ही वीर्यगुणकी शक्ति सर्व जीव प्रदेशोंमें वीर्यबलरूपधारी प्रवृत्त हुईं। इस प्रकार किसी भव्य जीवको काललब्धि प्राप्त होनेपर सम्यक्त्वगुण ज्ञान दर्शन स्वचारित्र परमानन्दभोग स्वभाव वीर्यगुणोंकी कितनी ही शक्तियाँ स्वस्वभावरूप प्रगट होकर प्रवृत्त हुईं। उसी जीवके असंख्यात प्रदेशोंमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, परमानन्द आदि गुणोंकी शक्ति बुद्धिरूप शुद्ध, अबुद्धिरूप चित्‌विकार होकर अशुद्ध प्रवर्तती हैं। इस प्रकार स्वरूप (ज्ञानधारा) विकार-रूप (कर्मधारा) दो धाराएँ बारहवें गुणस्थान तक रहती हैं। इस कारणसे इस जीवको इतने काल तक मिश्रधर्म परिणति कहते हैं। क्यों ?

स्वभाव तो प्रगट हुआ है परन्तु गुण विकारी भी प्रवर्तता है, जिससे वह जीव द्रव्य उतने काल तक मिश्रधर्मी कहलाता है। तथा जिस कालमें मन इन्द्रिय बुद्धि (ज्ञान) शक्ति सर्वथा स्वभावरूप होगी तब ही जानौं की गुणोंकी अनंत शक्ति स्वभावरूप होगी। वहाँ सर्वथा स्वभावरूप गुण कहेंगे। इति मिश्रधर्म अंतरात्मा परिणति कथन समाप्तं ।। इति मिश्रधर्मवाद ।। इति एकादशवाद ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१५) जीवाधिकार वर्णन

मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति, पर परिणति फल भोगादि चित्‌विकारभाव तथा इस चित्‌विकार होनेसे जीवके संसार-मुक्त भाव उत्पन्न होते हैं। वे कौन ?

जीवके पुण्य-पाप, शुभ अशुभभाव, राग-चिकने परिणामरूप जीवका बंधभाव, राग-द्वेष-मोह जीवके आस्रव-भाव, परभावका आचरण नहीं करनेरूप जीवका सवरभाव, चित्‌विकारकेअंश नष्ट होनेरूप जीवका निर्जराभाव, सर्व चित्‌विकारका नष्ट होना जीवका मोक्षभाव, इतने चित्-विकार संसार मुक्तिभाव भेषोंमें एक व्याप्य-व्यापक तो जीव हुआ है; अन्य कोई द्रव्य नहीं हुआ हे। इनरूप जीव एक अपने आप है। परन्तु यह भाव कोई जीवका निज जाति-स्वभाव नहीं है। इतने भावोंमें जो चेतना व्याप्त हो रही है, उसी एक चेतनाको तू जीवका निजजातिस्वभाव जानना। यह चेतना ही केवल जीव है। वह अनादि अनंत एकरस है। इस कारण यह चेतना स्वयं साक्षात् जीव जानना। तथा इन रागादि विकारभावोंको इस जीवके स्वांगभेष निःसंदेह जानने, अतः जीव शुद्ध चेतनारूप स्वयं हैं।

इन रागादिभावोंमें अपने आप जीव चेतनरूप प्रवर्तता है। चेतना है वह जीव है. जो जीव है वह चेतना है। अतः चेतनरूप जीव अपने आप होकर तिष्ठा है। जीवका निश्चयसे चेतना इतना भाव है। अन्य सर्वभाव जीवपदका कोई नहीं है ।। इति जीवाधिकार ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१६) अजीवाधिकार वर्णन

पांच वर्ण, दो गंध, पंच रस, आठ स्पर्श, पांच शरीर, छह संहनन, छह संस्थान, पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पच्चीस कषाय, पंद्रह योग, मोह, राग, द्वेष, वर्गणा–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय, नोकर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक इत्यादि सर्व भेद पुद्गल परिणाममय प्रगट जानने। तथा यह पुद्गल जीवके रागादिकका निमित्त प्राप्त होने पर जीवके साथ एकक्षेत्रवगाही होता है–एकीभूत होता है इस प्रकार जीवसे पुद्गल एकीभूत हुए हैं। उस जीवके समीप तिष्ठे हुए पुद्गल जिस-जिस लक्षण-रूप हो परिणमते हैं, वे सर्व लक्षण पुद्गलपरिणाममय जानने। उन लक्षणोंको कहते हैं—

तीव्र, मंद, मध्यम कर्मप्रकृतियोंके सुख दुःख रसरूप लक्षण होते हैं. मन, वचन, कायके हलन-चलनरूप लक्षण होते हैं, कर्मोंकी प्रकृति परिणामरूप लक्षण होते हैं, कर्मत्वके निज फल होनेको समर्थ उदयरूप लक्षण होते हैं, चारों गतिरूप लक्षण होते हैं, पांच इंद्रियरूप लक्षण होते हैं, छह कायरूप लक्षण होते हैं, पंद्रह योगरूप लक्षण होवे हैं, कषाय परिणामरूप लक्षण होते हैं जीवके ज्ञानगुणकी पर्यायमें (सुमति-कुमति आदि) आठ नाम संज्ञामात्र वचन-वर्गणा उत्पन्न करनेके नाम रचनारूप आठ अवस्था लक्षण होते हैं, जीवके चारित्रगुणकी पर्यायमें सात नाम संज्ञा मात्र वचनवर्गणारूप रचना कार्य उत्पन्न करनेरूप लक्षण होते हैं; जीवके सम्यक्त्वगुणकी पर्यायमें छह नाम संज्ञा वचन वर्गणा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप रचनामात्र कार्य उत्पन्न करनेरूप लक्षण होते हैं; जीव-के छह कर्मरूप रंग नाम भेदकर लेश्यारूप लक्षण होते हैं, जीव संज्ञीभावके दो नाम मात्र भेद रचना उत्पन्न करनेरूप लक्षण होते हैं, जीवके भव्य अभव्य नाम मात्र रचना उत्पन्न करनेरूप लक्षण होते हैं, आहारक, अनाहारकरूप नाम मात्र रचना उत्पन्न करनेरूप लक्षण होते हैं, प्रकृतियोंका निजकाल मर्यादा तक रसरूप रहता है सो स्थितिबंध लक्षण होता है, कषायोंका उत्कृष्ट विपाकरूप लक्षण होता है, कषायोंका मंद विपाकरूप लक्षण होता है; चारित्रमोह विपाकका यथाक्रमसे नष्ट होना वह संयमरूप लक्षण होता है, पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म, बादर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, चौरासीलाख भेदादिरूप लक्षण होते हैं। प्रकृतियोंके उदय और उदय अभावरूप अवस्थासे भिन्नभिन्न गुणस्थान होते हैं, वह मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरति, देशविरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय, उपशांत-मोह, क्षीणकषाय, सयोग, अयोग इतने लक्षण होते हैं। ये सर्व लक्षण कहे, वे सर्व पुद्गल परिणाममय जानने।

यह पुद्गल जब जीव प्रदेशोंसे एकक्षेत्रावगाही पुद्गल होता है, तब जीवके समीप तिष्ठे पुद्गल उपर्युक्त लक्षणोंरूप परिणमते हैं, इस कारणसे इन लक्षणरूप पुद्गल परिणामोंको जीव समीपी (निकटवर्ती) कहते हैं। अतः ये सर्व पुद्गल परिणाम अचेतन–पुद्गलमय जानने। इनमें चेतनका भ्रम न करना। सदाकाल अन्य द्रव्य ही जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनको जीवरूप प्रतीति करना ही मिथ्यात्व है। सम्यक् ज्ञाता इनको अचेतन परद्रव्य और भिन्न ही जानता है, स्वयंको चेतनारूप चेतनद्रव्य जानता है भिन्न आचरण करता है (अनुभव करता है)।

तथा जब जीवसे एकक्षेत्रावगाही पुद्गल है वह उदयरूप परिणमित होते हैं, उसीकालमें सहज ही जीवका चित्‌विकार भी उस उदयका निमित्तमात्र प्राप्त होनेपर उसी भांति उसीप्रकारके भावसे, उसीप्रकार बनकर, उसीप्रकार स्वाँगकर, उसीप्रकार अनुसरण करके चित्‌विकारभाव होते हैं।

जो क्रोधरूप पुद्गल उदयरूप परिणमित हो, तो उसोकालमें चित्‌विकार भी उसीप्रकारका भाव होता है, इस प्रकार सर्व जानना। जीवके इस प्रकारके चित्‌विकार भावोंको औदयिकभाव कहते हैं। अथवा जब इन एक क्षेत्रावगाही पुद्गल प्रकृतियोंके उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय इन तीन प्रकारसे नष्ट होनेंके उपाय द्वारा पुद्गल प्रकृति नष्ट होती है। तब उसीकालमें इस जीवका उस प्रकारका चित्‌विकार भी निःसंदेह नष्ट हो जाता है। जब चित्‌विकार नष्ट हुआ, तब केवल एक चित् स्वयं ही प्रगट हो जाता है। परन्तु एक विशेष बात है—

जिसप्रकारकी प्रकृतियोंके नष्ट होनेंका भाव हो, चित् शुद्धताको उसीप्रकारका नाम प्राप्त होता है। प्रकृतियों-का उपशम हो तो चित्‌को उपशम शुद्धता नाम प्राप्त होता है। प्रकृतियोंके क्षयोपशमसे चित्‌को क्षयोपशम शुद्धता नाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त होता है प्रकृतियोंके क्षयसे चित्को क्षायिक शुद्धता नाम प्राप्त होता है। इस प्रकार जीवके औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक चार भाव हुए। जो कोई जीवके निजजाति स्वभावको इन भावोंरूप देखता है वह मिथ्यात्वी है।

अब, इन चारों भावोंमें प्रवृत्त एक चित्—इन रूप चित् ही हो गया है, वही चित् (जिस जीवने स्वयंको) एक, केवल, जिन* देखा, वह जोव निजजातिका ज्ञाता हुआ। इन चारों भावोंमें व्याप्त एक चेतना, वह चेतना (एक जीव) निजरूप होकर प्रगट हुई। तथा शुद्धाशुद्ध लक्षण उसी चेतनाके भाव ठहरे। जब शुद्धभाव हैं तब अशुद्ध नहीं हैं, जब अशुद्धभाव हैं, तब शुद्ध नहीं हैं। तथा कितने ही काल तक शुद्ध–अशुद्ध दोनों भी भाव होते हैं परन्तु तो भी यह चेतवा इन भावोंमें सदा पाई जाती है (प्राप्त होती है), कभी भी अस्त नहीं होती क्योंकि अनादि अनंत रहती है। अतः ज्ञाताके चेतनाहीका जीवरूप आचरण है। एक चेतना ही द्वारा जीवरूप प्रगट होता है। निःसंदेह जीव एक चेतनारूप ही प्रगट हुआ। इति अजीव अधिकारः।

(१७) कर्त्ता कर्म क्रिया अधिकार वर्णन

जिस वस्तुसे परिणाम प्रवाह उठा करता है, उस वस्तुको उस प्रवाहका कर्त्ता कहते हैं। तथा उस वस्तुके उस परिणाम प्रवाहको कर्म संज्ञा कहते हैं। तथा उस

* जिन = परमात्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुके उस परिणाम प्रवाहको कर्म संज्ञा कहते हैं, उस परिणाम प्रवाहमें पूर्व परिणामका व्यय होना और उत्तर परिणाम उत्पन्न होना क्रिया है। तो भी कर्त्ता-कर्म-क्रिया तीनों एक वस्तुके होती हैं, वस्तुत्वमें कुछ भेद नहीं है। जैसे मिट्टी कर्त्ता, घड़ा कर्म, पिंड आकार नष्ट होकर घट आकार होना क्रिया, इस प्रकार एक मिट्टी वस्तुमें इन तीन भावोंका विकल्प करते हैं परन्तु कर्त्ता-कर्म-क्रिया ये तीनों मिट्टीके ही हैं एक मिट्टीसे भिन्न नहीं। इन तीनों भेदोंमें मिट्टी एक ही है तीनों मिट्टीसे ही उत्पन्न हुए हैं। उसीप्रकार चेतनवस्तुके तीनों चेतन ही होते हैं, अचेतन वस्तुके तीनों अचेतन ही होते हैं। अपनी अपनी वस्तुसे ये तीनों व्याप्यव्यापक होते हैं, पर सत्तासे व्याप्यव्यापक कोई नहीं होता—यह मर्यादा सदाकालसे है।

एक कर्त्ताके चेतन–अचेतन दो कर्म नहीं होते हैं, एक कर्मके चेतन–अचेतन दो कर्त्ता नहीं होते हैं। एक कर्त्ताकी चेतन–अचेतनरूप दो क्रियायें नहीं होती हैं. एक क्रियाके चेलन–अचेतन दो कर्त्ता नहीं होते हैं। एक कर्मकी दो क्रियायें नहीं होती हैं और एक क्रियाके दो कर्म नहीं होते हैं। एक कर्त्ताके चेतन कर्म अचेन क्रिया नहीं होती है, अचेतन कर्म चेतन क्रिया नहीं होती है। एक कर्मके चेतन कर्त्ता, अचेतन क्रिया नहीं होती है, अचेतन कर्त्ता, चेतन क्रिया नहीं होती है। एक क्रियाके चेतन कर्त्ता अचेतन कर्म नहीं होते हैं, चेतन कर्म, अचेतन कर्त्ता नहीं होते हैं। अतः एक चेतन सत्त्वके एक चेतन जातिके कर्त्ता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म, क्रिया तीनों व्याप्यव्यापक जानने। अचेतन एक सत्ताके एक अचेतन जातिके कर्त्ता-कर्म-क्रिया व्याप्यव्यापक जानने। अन्य द्रव्यका कर्त्ता अन्य द्रव्य किसी प्रकार भी नहीं होता है, अन्य द्रव्यका कर्म अन्य द्रव्यरूप नहीं होता है। अन्य द्रव्यकी क्रिया अन्य द्रव्यकी नहीं होती है। निःसंदेह किसी प्रकार भी नहीं होती है। ज्ञाता जानता है, मिथ्यात्वीको कुछ सुध (–बोध) नहीं है।

पुनः अन्यत्—परद्रव्य परिणमन करानेके लिये स्वयं निमित्तका कर्त्ता नहीं है तथा कोई द्रव्य किसी द्रव्यको परिणमन नहीं कराता है, क्योंकि कोई द्रव्य निःपरिणामी (–अपरिणामी) नहीं, सर्वद्रव्य परिणामी हैं अन्य कोई जानेगा–जीव पुद्गल मिलकर एक संसारपरिणति उत्पन्न हुई है वही अनर्थ है क्योंकि दो द्रव्य मिलकर कभी भी एक परिणति नहीं होती है। यदि एक परिणतिरूप हों, तो दोनों द्रव्यका नाश हो जाय। यह दूषण है। अतः चित्-विकार संसार-मुक्तिरूप स्वयं ही व्याप्यव्यापक होता है, तथा भिन्न प्रवर्तता है। तथा वहाँ ही पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मत्वरूपसे व्याप्यव्यापक होकर अनादिसे भिन्न ही सदा परिणमता है, इतना ही जानना।

जीव पुद्गलको परस्पर संसारदशामें निमित्तनैमित्तिक-भाव जानना, सहज ही आप-आपरूप भिन्न-भिन्न परिणमन करते हैं। किसी भी जीवका पुद्गलसे परस्पर संबंध कुछ नहीं है। जिन्होंने यह कर्त्ता-कर्म-क्रियाका भेद भले प्रकार जाना, उन्होंने अपनी चेतना भिन्न जानी, अपनी परिणतिकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धता हुई, तथा वे ही संसारसे भले प्रकार विरक्त होते हैं, परमात्मस्वरूपकी प्राप्ति उन्हींको होती है। इति कर्त्ता-कर्म-क्रिया अधिकार।

(१८) पुण्य-पाप अधिकार

पौद्गलिक पुण्य–पाप एक कर्मके दो भेद हैं। इन दोवोंकी एक कर्म जाति है, दोनों कर्मसे अभेद हैं, दोनों परस्पर अविरोधी हैं, अचेतन हैं, जीवके चित्विकारमें भी पुण्य-पाप उत्पन्न होते हैं, वे दोनों एक विकारभावके भेद हैं, विकार जाति एक ही है, दोनों विकारसे अभेद हैं; दोनों आकुलतारूप हैं, संसाररूप हैं, खेदरूप हैं, औपाधिक हैं, तथा दोनों कर्मबंधके निमित्त हैं, दोनों स्वयं एक बंधरूप हैं उवसे मोक्ष कैसे हो ? इनसे मोक्ष कभी भी नहीं होता जो इन दोनोंसे मोक्ष होनेकी प्रतीति करता है; वह अज्ञानी है क्योंकि जो स्वयं बंधरूप है, उवसे मोक्ष कैसे हो ?

एक जीवका निजजातिरूप चेतनास्वभाव प्रगट होनेपर मोक्ष है। उस चेतनाका स्वभाव मोक्षरूप है। निःसंदेह उसकी प्रगटतासे केवल मोक्ष ही है। इसलिये ज्ञाताके ऐसी चेतनाका आचरण है, अतः उसे सहज ही मोक्ष होता है। जीवका विकार पुण्य–पाप केवल बंधरूप है, त्याज्य है। एक जीवका चेतनास्वभाव ही मोक्ष है।। इति पुण्यपापाधिकारः ।।

(१९) आस्रवाधिकार

आस्रव अर्थात् आना। चित्विकाररूप राग, द्वेष, मोह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये जीवके आस्रव हैं, मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ये अचेतन पुद्गलके आस्रव हैं। अतः चित्‌विकाररूप राग-द्वेष-मोह तो पौद्गलिक आस्रवमें निमित्तमात्र हैं। तथा पौद्गलिक मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ये आठ प्रकार आदिरूप कर्मवर्गणा आनेमें निमित्त हैं। इस कारणसे जब जीव ज्ञानरूप परिणमित हुआ, तब ही राग, द्वेष, मोहरूप चित्‌विकाररूप आस्रवसे रहित हुआ तब सामान्यसे ज्ञानीको निरास्रव करते हैं। ज्ञानी निरास्रव मुख्य नाम पाता है। तथा यदि ज्ञानीको भेदसे देखते हैं तो जब तक ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुणोंका जघन्य प्रकाश है, तबतक आत्माका स्वभाव जघन्य कहलाता है, तबतक ऐसा जघन्य ज्ञानी बुद्धिपूर्वक तो निरास्रव है तथा जघन्य ज्ञानीके अबुद्धिपूर्वक रागभावरूप परिणाम कलंकसे आस्रव बंध होता है। अतः जघन्य ज्ञानी बुद्धिपूर्वक परिणामोंसे निरास्रव और निर्बन्ध प्रवर्तता है।

जब अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, चारित्रादि उत्कृष्ट प्रकाशरूप प्रगट हुए तब आत्मस्वभाव उत्कृष्ट कहलाता है। ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानीके बुद्धि—अबुद्धिभावका नाश हो गया जिससे उसे सर्वथा साक्षात् निरास्रव और निर्बंध कहते हैं। उत्कृष्ट ज्ञानीके निरास्रव और साक्षात् निरास्रव ये दो विशेष भेद जानने। ऐसा चेतन आस्रव विकार है। अतः हे संत। तू एक निजजाति चेतना ही जीवका निज-स्वभाव जान। इति आस्रव अधिकारः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२०) बंधाधिकार

बन्ध अर्थात् सम्बन्ध। जीवका चारित्र विकार राग बन्ध है। चिकना रूखा पुद्गलोंहीका बन्ध है।

भावार्थ—पौद्गलिक कर्मवर्गणाओंमें तो परस्पर चिकने रूखे भावसे संबंध करता है। ऐसा पुद्गल कर्म-स्कन्ध रागी जीवके राग परिणामोंसे जीव प्रदेशोंसे चिपकता है। इसप्रकार चेतन विकार बन्ध और अचेतन बन्ध जानना। राग जीवका विकारभाव है, एक चेतना ही जीवका स्वभाव जानना वह चेतना ही जीव है। बन्धभाव विकार ही है, जीवत्व नहीं है। इति बन्धाधिकारः।

(२१) संवराधिकार

हे संत! काललब्धि प्राप्त होने पर जितने कर्म नष्ट हुए, उतना जीवका विकार भी नष्ट हुआ है। विकारके नाश होने पर जितने सम्यक्त्व ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि वह स्वरूपरूप होकर प्रगट हुए, वे विकाररूप नहीं प्रवृत्त हुए, उसे संवरभाव कहते हैं।

भावार्थ—जो शक्ति विकाररूप नहीं होती है वह संवरभाव है। जीवके ऐसा संवरभाव होनेपर उस जीवके कर्मवर्गणाओंका आना भी सहज ही रुकता है। इसीप्रकार जीव संवर, पुद्गल कर्म संवर दोनों होते-होते जीव अपने आप सर्व संपूर्ण स्वभावरूप प्रगट होता जाता है। तथा सर्व कर्मवर्गणाओंका उस जीवकी ओर आना रुक जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इस प्रकार जो संवररूपमें प्रगट हुआ; वह एक चेतना-हीका स्वभाव जानना। वह चेतना ही जीव संवर जैसा कोई भाव है। इति संवराधिकारः।

(२२) संवर पूर्वक निर्जराधिकार

जैसे-जैसे पुद्गलकर्म विपाक देकर नष्ट होता है, वैसे-वैसे चित्‌विकारके भावभेद भी नष्ट होते हैं। तथा जो भाव नष्ट हो गए फिर उनका होना रुक जाता है। इस प्रकार अचेतन–चेतन संवर पूर्वक कर्म और विकार दोनों नष्ट होते हैं, वह संवरसहित निर्जरा है, ऐसी निर्जरा होते होते जीवका स्वभाव प्रगट होता है, कर्म सब दूर होता है, उससे निर्जरा एकभाव है और जो निर्जरावंत चेतना है वह एक चेतना जीव वस्तु है। इति संवरपूर्वक निर्जराधिकारः।

(२३) मोक्षाधिकार

इस प्रकार संवर पूर्वक निर्जरा होते-होते जब जीवगुण एककर्म–पुद्गल अथवा जीवद्रव्य एक कर्मपुद्गल सर्वथा जीवसे भिन्न होते हैं तो इव पुद्गलकर्मके सर्वथा नष्ट होते ही जीवका गुणविकार और जीवका प्रदेश विकार सर्वथा नष्ट हो जाता है। जब इसप्रकार पुद्गलकी रोक और जीव विकार सर्वथा नष्ट होते हैं तभीसे मोक्षभाव कहते हैं, ऐसा मोक्षभाव होनेपर साक्षात् जीवका सर्व निजजातिस्वभावरूप प्रगट हुआ। सर्व स्वभावभाव अनादिसे विकाररूप होनेसे गुप्त हो रहा था, वह भी काल प्राप्त होनेपर कुछ विकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूर हुआ, उसी समय कुछ स्वरूपभाव साक्षात् प्रगट हुआ। उतना ही स्वरूप बानगी (नमूना)में संपूर्ण स्वरूप वैसा ही प्रतिबिंबित होता है और तबसे स्वरूप क्रमक्रमसे प्रगट होते-होते साक्षात् होता है।

भावार्थ—जितना स्वरूप विकाररूप हुआ था, उतना ही स्वरूप साक्षात् व्यक्त हुआ। इसी-इसी प्रकार स्वरूप आत्माके उत्कृष्ट स्वरूपको साध रहा था, प्रकाशित करता था सो सर्व संपूर्ण प्रगट सिद्ध हुआ। संपूर्ण साक्षात् प्रगट हुआ, अन्य कुछ प्रगट होना शेष नहीं है। जो जिस भाँतिसे स्वरूप प्रगट होना था वह पूर्ण प्रगट हो गया। इस प्रकार आत्माका स्वरूप संपूर्ण परिणाम प्रवाहरूप उत्पन्न हुआ।

उस आत्माको नाम (संज्ञा)से क्या कहते हैं? परमात्मा, सिद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वस्वविश्रामी, मुक्त, धर्मी, केवल, निष्केवल, स्वयं। तात्पर्य यह है कि सर्व मोक्षभावमें जैसा जीवका स्वरूप था, वैसा ही सर्व परिणमित हुआ। मोक्ष एक भाव है, और जो मोक्षवंत चेतना है सो एक जीव निजजाति है। इति मोक्ष अधिकार।

(२४) कुनयाधिकार

जो कोई विकल्पी इस प्रकार मानता है—स्वभावभाव परिणतिरूप होगा तभी तो स्वभाव मानो, अन्यथा नहीं मानो तो उस अज्ञानीने वस्तुका नाश किया, वस्तुको नहीं जाना। तथा जो कोई इस प्रकार मानता है स्वभावभाव प्रगट परिणतिसे क्या है? वस्तुहीसे कार्य सिद्धि है? तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे अज्ञानीने स्वभावभाव परिणतिका नाश किया, शुद्ध होनेका अभाव किया, विकार परिणति सदा रखनेका भाव किया, मुक्ति होनेका नाश किया।

तथा जो कोई इस प्रकार मानता है–यह जो कुछ करता है, सो सर्व पुद्गल कर्म करता है, जीव न कुछ करता है, न कराता है, जैसाका तैसा भिन्न रहता है तो वह अज्ञानी स्वयंको शुद्ध–अशुद्ध दोनोंरूप नहीं देखता है, वह विकार–अविकार स्वभाव दोनोंको नहीं जानता है, वह विकारको नहीं छोड़ेगा। तथा कोई इस प्रकार मानता है–पुद्गल विपाक निमित्तमात्रसे क्या है? स्वयं स्वयंको निमित्त होकर स्वयं विकाररूप परिणमता हूं? तो उस अज्ञानीने विकारको नित्य माना, स्वरूपके समान माना।

सविकल्प अमूर्त्त द्रव्यके छाया तो नहीं है, परन्तु कोई अज्ञानी (जन) जीवके छाया स्थापित करके उस छायाको कर्म विडंबना लगाता है, जीवको भिन्न रखता है तो उस अज्ञानीके यह छाया भी एक वस्तु है, जीव उस छायासे अन्य किस क्षेत्रसे आया? तथा कोई अज्ञानी इस प्रकार मानता है–स्वचेतन पर अचेतन, इतना ही ज्ञान–दर्शन होनेपर जीव सर्वथा मोक्षरूप हुआ है, साक्षात् सिद्धपदको प्राप्त हुआ, सर्वथा ज्ञानी हो निवृत्त हुआ तथा जीवको अब कुछ शुद्ध होना शेष नहीं है, उस पुरुषने भावइन्द्रिय, भावमन, बुद्धिपूर्वक, अबुद्धिपूर्वक तथा जितनी जीवकी अशुद्ध प्रगट चित्तविकाररूप परिणति उतनी जीवद्रव्यकी नहीं जानी। जीवद्रव्य वर्तमान वर्तता नहीं देखा, उसने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकदेशभावको संपूर्णभाव स्थापित किया। यह भावइन्द्रिय आदि परिणति किसी और द्रव्यकी स्थापित की, तब उस पुरुषने अशुद्ध परिणति रहनेसे अशुद्ध नहीं माना। तथा इस अशुद्ध परिणतिके जानेसे (नष्ट होनेसे) जीव पर्यायको शुद्ध नहीं मानेगा तब उस पुरुषने साक्षात् परमात्मस्वरूप–संपूर्णस्वरूप–सर्वथा मोक्षस्वरूप होनेका अभाव किया, सदा संसार रखनेका उद्यम किया।

तथा कोई अज्ञानी इस प्रकार मानता है–स्वसंवेदन शक्तियोंको संपूर्ण स्वभावरूप ज्ञान होना मानता है, इतनी ही ज्ञानकी शुद्धता मानता है, इतना ही ज्ञान होना सर्व मानता है, इतने ही स्वसंवेदनभावको स्वरूप मानता है; इसीको सिद्धपद मानता है, अन्य सर्व भावोंसे जीवको शून्य मानता है, चारित्रगुणके स्वभावके समान ज्ञान–दर्शनके स्वभावको मानता है; उस अज्ञानीने ज्ञानका निजस्वभाव स्वज्ञेय–परज्ञेय प्रकाशक नहीं श्रद्धान किया, तथा उस पुरुषने स्वको देखनेका परको देखनेका दर्शनगुणका निजस्वभावरूप श्रद्धान नहीं किया है, तथा उस पुरुषको स्वपरका भेद नहीं उत्पन्न होगा। क्यों? परको जाननेपर स्वका भी जानना होता है क्योंकि परपद तो तब स्थापित होता है जब पहले स्वको स्थापित करे और स्व तब स्थापित होता है जब पहले पररूप स्थापित होता है। और इसीप्रकार कहता है ज्ञानके स्वभावको स्वयं ही स्थापित करनेका है, मेरे ऐसा ही ज्ञान प्रगट हुआ है, तो यह पुरुष बातोंके द्वारा तो ऐसा भाव कहता है परन्तु उस पुरुषके स्वस्थापनका ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पन्न नहीं हुआ है। स्वस्थापनका ज्ञान जब उत्पन्न होता है, तब परको पररूप स्थापनका भाव उत्पन्न होता है। ऐसा स्वपरप्रकाशक ज्ञानका, दर्शनका निजस्वभाव ही है। तथा इस स्वभावको नहीं माने तो ज्ञान-दर्शनगुण नष्ट हुआ। जब गुण नष्ट हुआ तो द्रव्य नष्ट हुआ। जब द्रव्य नष्ट हुआ तो वस्तु नष्ट हुई। सर्व एकांत स्थापनसे एक स्वसंवेद्यकी मान्यतासे इस प्रकार नष्ट होनेकी परम्परा सिद्ध होती है, अन्य कुछ साध्य सिद्धि नहीं है।

तथा कोई अज्ञानी इस प्रकार मानता है—जब तक ज्ञान कुछ जानता है, तब तक ज्ञान मलिन है। जब ज्ञानका जानना स्वभाव मिट जाता है तभी जीव सिद्धरूप होता है।

वह अज्ञानी ज्ञानका स्वभाव मूलसे नहीं जानता है। इस प्रकार नहीं जानता कि ऐसा ज्ञान तो उसको कहते हैं जो जानता है तथा वह जानना ही नष्ट किया तब उसे ज्ञान कैसे कह सकते हैं? उस ज्ञानगुणका नाश ही हुआ, तब वस्तुका नाश सहज ही हुआ। इसीके समान बहुतसे अनर्थ जानना। इति कुनयाधिकार।

सम्यग्भावस्य यथाऽस्ति तथाऽवलोकनाधिकार

[सम्यग्भावका स्वरूप जिस प्रकार है उसीप्रकार अवलोकन करनेका अधिकार।]

चेतन, अचेतन, द्रव्य, गुण, पर्यायरूप जितने भी ज्ञेय हैं उतनेहीका जो देखना जानना वह देखना जानना ही चेतनद्रव्यकी सिद्धि है। सब ज्ञेयका देखना जानना प्रकाशके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान है। निःसंदेह चेतनापिण्ड–चेतन ग्रन्थि इतनी जीववस्तुकी सिद्धि है। हे जीव! यदि कोई कर्म, शरीर, कषाय, राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, नाम, यशःकीर्ति, इंद्रिय, पुण्य, पाप, जीवस्थान, योनि, मार्गणा, गुणस्थान आदि सर्व पौद्गलिक भावोंको जीववस्तुरूप प्रतीति करे तो जीववस्तुकी सिद्धि नहीं होगी। ये भाव तो सर्व अचेतन परद्रव्यके परसत्त्वस्वरूप हैं।

जीव वस्तुकी 'चेतनाभाव पुंज' इतनी ही सिद्धि है। तथा यदि कोई अज्ञान, अदर्शन, मिथ्यात्व, अविरति, शुभ, अशुभ, भोग, राग, द्वेष, मोह आदि चित्तविकारको ही जीववस्तुरूप प्रतीति करेगा तो विकारसे जीववस्तुकी सिद्धि नहीं है वह तो चेतनका कलंकभाव है।

जीव वस्तुकी 'मूल चेतनामात्र' इतनी ही सिद्धि है तथा सम्यक्त्व होना, एकाग्रता होना, यथाख्यात होना, अंतरात्माभाव होना, सिद्धभाव होना, केवलज्ञान, केवल-दर्शन होना, स्वभाव प्रगट होना इत्यादि भावोंके होनेको कोई जीववस्तु जानेगा? अरे! वे प्रगट होनेके भाव तो सर्व चेतनाकी अवस्था है—दशा है।

जीव वस्तुकी 'चेतनामात्र मूलस्थान' इतनी ही सिद्धि है। कोई संसार मुक्तिभावको जीववस्तु जानेगा? हे जीव! वह भी तो चेतनाकी दशा है। जीव वस्तु 'मूल चेतनामात्र' इतनी ही है। तथा कोई अमूर्त्तादि भावोंको जीववस्तु जानेगा, तो हे जीव! वह तो अचेतन द्रव्योंमें भी पाये जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव वस्तु 'मूलस्थान चेतनामात्र' इतना ही है। तथा कर्त्ता, कर्म, क्रिया, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, द्रव्य, गुण, पर्याय, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, सामान्य, विशेष इत्यादि-भाव भेदोंको जीव वस्तु जानेगा, वह भेद तो सर्व वस्तुओंकी नित्य अवस्था है।

जीव वस्तु 'चेतनामात्र मूल वस्तु' इतनी ही है तथा द्रव्यार्थिकसे वस्तुभाव प्रगट होता है, तथा पर्यायार्थिकसे वस्तु प्रगट होती है, अथवा निश्चयसे वस्तु प्रगट होती है, अथवा व्यवहारसे वस्तु प्रगट होती है। इन भावोंको कोई जीववस्तु जानेगा, वह भी तो वस्तुकी अवस्था है—वस्तुकी दशा है। जीववस्तुकी 'चेतना वस्तु मूल' इतनी ही सिद्धि है।

सर्वका भावार्थ यह है कि जो चेतना वही जीव-वस्तुकी सिद्धि है, जीववस्तु एक चेतना निष्पन्न हुई। अन्य भेद विकल्परूप जीववस्तु कहीं भी, (भूलकर भी) कभी भी, किसी भी प्रकार नहीं होती। एक चेतना ही भेदसे जीव-द्रव्यकी सिद्धि हुई। चेतनासे जीववस्तुकी सिद्धि निःसंदेह प्रगट की, अब यह चेतना निःसंदेह प्रगट करते हैं—

हे भव्य! सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सुख, भोगादि इन भावोंसे बंध एक पिंड—एक (मिश्रण)—एक पुंजको चेतना कहते हैं। इसी पुंज पिंडरूपसे चेतना सिद्ध हुई। चेतना इन गुणोंकी गांठ (ग्रन्थि) सिद्ध हुई। इन ज्ञानादिभावोंसे जो कुछ अन्य सर्वभाव हैं, वे कोई भाव चेतनाको प्राप्त नहीं हुए। चेतनासे निःसंदेह इन ज्ञानादि-भावोंकी सिद्धि हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वका भावार्थ यह है कि कोई अन्य भाव चेतनारूप नहीं होते। चेतना इन ज्ञानादिभावसे उत्पन्न है।

अब कोई प्रश्न करता है—जो चेतनासे जीववस्तु अनादिसे सिद्ध है तथा इन ज्ञानादिभावोंसे अनादिसे चेतनाकी सिद्धि है, तो उसीसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि उत्पन्न हुए, वह उत्पन्न होना क्या है? उसे तू सुन:—

मित्र! यह उत्पन्न हुई चेतना तथा चेतनाको ज्ञानादिभाव तो अनादिसे जिसप्रकार हैं उसीप्रकार ही हैं, इनमें तो कुछ हलचल नहीं हुई है। प्रत्यक्ष हैं, कहीं आये-गये नहीं हैं, इस बातमें कुछ भी संदेह नहीं है। हे भाई! वस्तु तो सत् है, विद्यमान है, परन्तु अनादिसे यह विभाव–विकारभाव दोष इस जीवको उत्पन्न हुआ इस कारणसे पागल जैसी दशा हो रही हैं। वह क्या?

स्वको पररूप स्थापित करता है, परको स्वरूप स्थापित करता है, स्वका परका नाम भी नहीं जानता है, दर्शन, ज्ञान, सम्यक्त्व, चारित्र, परमानंद, भोगादिभाव विकारी हो गये, उनमें ज्ञान तो अज्ञान विकाररूप प्रवृत्त हुआ, तब स्वज्ञेय आकारको नहीं जानता है, पर ज्ञेय आकारको नहीं जानता है, स्वज्ञेय परज्ञेयका नाम मात्र भी नहीं जानता है। इस प्रकार ज्ञानकी शक्ति अज्ञानरूप हो प्रवृत्त हुई।

दर्शन, अदर्शन, विकाररूप प्रवृत्त हुआ–तब स्वदृश्य (देखने योग्य स्व) वस्तु नहीं देखता है, पर दृश्य (देखने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य पर) वस्तु नहीं देखता है, स्वद्रव्य और परद्रव्य नाम मात्र भी नहीं जानता है, इस प्रकार दर्शनकी शक्ति अदर्शनरूप ही प्रवृत्त हुई। स्वकी स्वरूप प्रतीति नहीं है, परकी पररूपसे प्रतीति नहीं है, इस प्रकार सम्यक्त्वकी शक्ति मिथ्यारूप हो प्रवृत्त हुई।

चारित्र विभावरूप प्रवृत्त हुआ—तब निज वस्तुभाव स्थिरता—विश्राम आचरण छोड़कर, चारित्रकी सर्व शक्ति पर पुद्गल स्वांगवत् विकारभावोंमें स्थिरता—विश्राम आचरण-रूप प्रवृत्त हुई। इस प्रकार चारित्र विभावरूप प्रवृत्त हुआ।

भोगगुण विभावरूप प्रवृत्त हुआ—तब निज स्वरस स्वादभोग छोड़कर, पर पुद्गल स्वांगवत् चित्‌विकारभावोंके स्वादभोगरूप प्रवृत्त हुआ, इस प्रकार भोगकी शक्ति विभाव-रूप प्रवृत्त हुई।

इस प्रकार भैया, जब चेतना विकाररूप हुई, तब यह चेतना स्वयं नास्तिरूप जैसी हो रही थी। ऐसा कोई कौतुक (आश्चर्यजनक)रूप हुआ जैसे हाथ ऊपर रखी वस्तुको अन्य स्थानमें देखते फिरते हैं, वही दशा इस चेतनाकी हो गई। 'स्वयं नास्ति' यह भ्रमरूप उत्पन्न हुआ। काल प्राप्त होनेपर सम्यक्त्वगुण, श्रद्धागुण तो विकारसे रहित होकर सम्यक्त्व-रूप हो प्रवृत्त हुआ, अपने शुद्ध श्रद्धानरूप हो प्रवृत्त हुआ। ऐसे निर्विकल्प सम्यक्त्वको सम्यक्‌रूप कहना। तथा जब विशेष भेद विकल्पसे सम्यक्त्वगुणको सम्यक्‌रूप कहना हो तब इस प्रकार कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वजातिका स्वजाति द्वारा भिन्न निर्णय हुआ, इतना तो विकल्प जानना। 'सम्यक्' इतना तो निर्विकल्प जानना। तथा उसी समय ज्ञानगुणकी कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप परिणमित हो केवल जाननेरूप प्रवृत्त हुई, इन ज्ञानकी शक्तियोंको सम्यक्रूप इतना कहना निर्विकल्प। जब सम्यक्ज्ञान शक्तिके भेद विकल्प करें तब—

स्वज्ञेय जाति भेद जानना, परज्ञेय जाति भेद भिन्न जानना, इस प्रकार विकल्प करें। सम्यक्ज्ञान शक्ति इतना कहना निर्विकल्प। उसी समय दर्शनगुणकी कितनी ही शक्तियाँ सम्यग्दर्शन रूप हो प्रवृत्त हुईं केवल (मात्र) दर्शन रूप हुईं। इस प्रकार तो निर्विकल्प दर्शनको 'सम्यत्व-रूप' कहना और जब सम्यक्दर्शनकी सम्यक् शक्तियोंको विशेष भेद द्वारा कहना हो तब—

स्वदृश्य वस्तु जाति भिन्न देखना, परदृश्य वस्तु जाति भिन्न देखना, इस प्रकार तो विकल्प, और दर्शन शक्तिको 'सम्यक्' इतना कहना निर्विकल्प है। उसी समय चारित्रगुणकी कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप हो प्रवृत्त हुईं—केवल चारित्र निजरूप हो प्रवृत्त हुईं। इसप्रकार जब चारित्र शक्तियोंको 'निर्विकल्प सम्यक्' कहा तब चारित्रकी सम्यक् शक्तियोंको भेद विकल्पसे इस प्रकार कहना—

परको छोड़ना, निजस्वभावभावमें स्थिरता—विश्राम—आचरण करना यह भी विकल्प है। चारित्र शक्तियोंको 'सम्यक्रूप' इतना कहना निर्विकल्प। उसी समय भोग-गुणकी कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप हो प्रवृत्त हुईं—केवल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निजभोगरूप प्रवृत्त हुईं। इस प्रकार भोगगुणकी शक्तियोंको निर्विकल्प 'सम्यक्' कहना और भोगगुणकी शक्तियोंको भेद विकल्पसे इस प्रकार कहना

पर स्वाद छोड़कर निजस्वभावोंका स्वाद लेना, विकल्प (भेद) है, भोग शक्तियोंको 'सम्यक्' इतना कहना निर्विकल्प है। इस प्रकार सम्यक्त्व गुणकी सर्व शक्तियां, ज्ञानादि गुणोंकी कितनी ही शक्तियाँ सम्यक्रूप हुईं। इस सम्यक्त्वको भेदाभेद विकल्पसे दिखाया। इनका अभेद पूंज रूप–गांठरूप चेतना वह चेतना कितने ही अंशमें सम्यक् रूप हुई जितनी ही चेतना सम्यक्रूप उत्पन्न हुई। वह चेतना सम्यक्से अभेद निर्भेद है। तथा इस चेतनाको सम्यक्रूप उत्पन्न होते जीव वस्तुको सम्यक्रूप उत्पन्न हुआ कहलाता है, केवल निजरूप हुआ कहलाता है। जैसा स्वयं था वैसा ही अपने आप प्रगट हुआ, मूलस्वरूप परिणमित हुआ। तथा निम्न प्रकार भी कहा जाता है—

अनादिसे विकाररूप अटवीमें भ्रमण करते हुए इस जीववस्तुने अब निज सम्यक्रूप गृहमें आकर निवास किया। इस जीवका मूल सम्यक्भाव था, वह मूल (अपना) भाव गुप्त हो रहा था वह अब कैसा प्रगट हुआ वह कहते हैं।

अब यह जीव अपने सम्यक्भाव प्रगटनेसे अपने सम्यक् स्वभावरूप समुद्रमें स्वयं ही मग्न हुआ। यह सम्यक्-भाव जीवको सर्व अन्य विकल्पोंसे भिन्न दिखलाता है। एक गुणकी अपेक्षा अन्य सर्व अनंत गुणोंका पुंज वस्तु कहलाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। उस वस्तुको ज्ञान जानता है, दर्शन देखता है, चारित्र स्थिरीभूत होकर आचरण करता है; वह इस प्रकार—

ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप मैं हूं, अथवा चेतना मात्ररूप मैं हूं, यह विकाररूप मैं नहीं हूं, सिद्ध समान मैं हूं, बंध, मुक्त, आस्रव, संवररूप मैं नहीं, अब मैं जागा, मेरी नींद गई। मैं अपने एक स्वरूपको अनुभव करता हूं, मैं सर्वांग स्वरूपको अनुभव करता हूं, मैं इस संसारसे भिन्न हो गया, मैं स्वस्वरूपरूप हाथी पर आरूढ़ हुआ, मैंने अशुद्धभाव पट (किवाड़) खोलकर स्वरूप घरमें प्रवेश किया, मैं इन संसार परिणामोंका तमाशगीर (दर्शक) हुआ, इन्द्रियादि भाव मेरा स्वरूप नहीं है, मैं अभेदरूपको अनुभव करता हूं, मैं निर्विकल्प आचरण करता हूं, निश्चय, व्यवहार, नय, प्रमाण, निक्षेपादि अब मेरे नहीं हैं, ज्ञानादि गुणोंकी पर्याय भेदभाव है, मेरे गुणस्वरूपमें भेदभाव नहीं है। गुणस्थानादि-भाव मेरा स्वरूप नहीं, अब मैं अपने आपको देखता जानता हूं; अब मैंने स्वभावभाव भिन्न किया, परभाव भिन्न किया, मैं अमर हूं, इस प्रकार अनेक अनेक भाँति मन वचनमें सम्यक्-भावकी स्तुति होती है।

बारंबार मनमें चिंतन करता है, इस प्रकार विचारता हुआ सुख मानता है, परन्तु यह सर्व मन वचनका विकल्प चिंताभावका प्रवर्तन है। मन वचनके विकल्प हैं। परन्तु सम्यक्भावका तात्पर्य इतना ही है—

ज्ञानपरिणाम तो सम्यक्ज्ञान परिणामरूप वर्तते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शन परिणाम तो केवल सम्यक्दर्शन परिणामरूप वर्तते हैं, चारित्र परिणाम तो केवल एक सम्यक् स्वचारित्र परिणामरूप वर्तते हैं। भोग परिणाम तो एक सम्यक् स्वभोगरूप वर्तते हैं, इस प्रकार अपने अपने स्वभावरूप साक्षात् प्रगट हुए परिणाम प्रवर्तते हैं।

इस प्रकार विशेषरूपसे ज्ञानादिगुण सामान्यरूपसे एक चेतना ही स्वभावरूप प्रवर्तते हैं। सम्यक्भाव टंकोत्कीर्ण निश्चलरूप धारण किये हुए परिणमित होता है। इतने कथनसे जो कुछ अन्य प्रकार कहना, वह निःसंदेह सब दोष विकल्प है। क्योंकि उस सम्यक्भाव प्रगट परिणमनमें अन्य परमाणुमात्रका भी कोई लगाव (संबंध) कुछ नहीं। केवल एक अपने आप स्वरूप परिणाम प्रवाह होता रहता है, वहाँ अन्य कोई बात नहीं, अन्य कोई विकल्प नहीं। सम्यग्दृष्टिके द्रव्यमें ऐसी सम्यग्धारा प्रगट हुई है। उनके तो इसी प्रकार प्रवर्तना है, परन्तु अन्य भांति जो कुछ स्वरूपका कथन वह सर्व दोष विकल्प मन वचनके हैं।

इति सम्यग्भावस्य यथाऽस्ति तथाऽवलोकन अधिकारः

सम्यक् निर्णय

अब अन्य कुछ नहीं। द्रव्य जैसाका तैसा ही जानना। जीवके सम्यक् होना ऐसा जानना जैसा पागलसे सयाना (चतुर) होना। इतना ही दृष्टांत भले प्रकार जानना। तथा ज्ञानादि सम्यक्का एक रस, अनेक रस एक ही पिंड

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, दृष्टांत—जैसे पांच रसोंको मिलाकर एक गुटिका बनी। उस गुटिकाका अब विचार करना तो यदि पांचों रसोंको देखें तो एक-एक रस अपने अपने ही स्वादको लिये सर्वथा अन्य रससे भिन्न-भिन्न प्रवर्तता है। किसी रसका स्वाद किसी रसके स्वादसे नहीं मिलता। सभी रस प्रत्यक्ष अपने अपने स्वादरूप अचल दिखते हैं। तथा यदि गुटिका भावकी ओर देखें तो उस गुटिका भावसे बाहर कोई रस नहीं है, जो रस है वह गुटिकाभावमें तिष्ठता है, उन पांचों रसोंका जो मिलकर पुंज या पिंड वही गोली इस प्रकार कथनमें तो भेद विकल्प-सा आता है परन्तु एक ही समय पांचों रसोंका मेलरूप भाव एकांत गोलीका भाव है। सो प्रत्यक्ष शुद्ध दृष्टिसे दृष्टांत और दार्ष्टांत देखना।

इस प्रकार सम्यक्त्वगुण और सम्यक्ज्ञानादि गुणोंकी शक्ति सम्यक्रूप हुई। वे ही पांचों गुण अपने अपने सम्यक्रूप भिन्न-भिन्नरूप परिणमित होते हैं। किसी गुणका सम्यक्भाव किसी अन्य गुणके सम्यक्भावसे नहीं मिलता सम्यक्त्वका जो वस्तु आकार श्रद्धान सम्यक् है, वही श्रद्धान सम्यक्रूप परिणमता है। ज्ञान शक्तियोंका आकार जानना-मात्र है, वही इतना सम्यक्भाव भिन्न ही परिणमित होता है।

दर्शनशक्तियोंका वस्तु देखने मात्र है सम्यक्भाव भिन्न ही परिणमित होता है।

चारित्रशक्तियोंका निजवस्तुके स्वभावमें स्थिरता विश्राम आचरणमात्र इतना ही सम्यग्भाव है वही चारित्रका सम्यग्भाव भिन्न ही परिणमित होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगशक्तियोंका निजवस्तुके स्वभावहोमें आस्वादरूप सम्यक्भाव है वह भाव इतना ही भिन्न परिणमित होता है। ये पांचों सम्यक् अपने अपने भावसे परिणमित होते हैं, कोई किसीमें नहीं मिलता और अपने अपने सम्यग्भावसे च्युत भी नहीं होते, जैसेके तैसे भिन्न-भिन्न परिणमित होते हैं। इस प्रकार तो सम्यक् भेदाभेदभावरूप भिन्न-भिन्न प्रवर्तते हैं। तथा जो दूसरे दृष्टिकोणसे विचार करें—

ज्ञानादि सम्यक्, चेतनारूप सम्यक्भावसे भिन्न नहीं है, जरा भी बाह्य नहीं है। सर्व सम्यक् चेतनाभावमें निवास करते हैं। इन पांचों ज्ञानादि सम्यक्का पुंज स्थान ही चेतनासम्यक् है। उन पांचों ज्ञानादि भावके मिलनेसे एक चेतना सम्यक्भाव उत्पन्न हुआ। पांचों सम्यक्भावोंका एक समवाय एक समयमें एकबार परिणमित होता है, उस पुंजको चेतना सम्यक्भाव कहते हैं। इस प्रकार इन पांचों भावोंको एक चेतना सम्यक्भावरूप ही देखना। भेद सम्यक्भाव अभेद सम्यक्भाव कथनमें भिन्न हैं, परन्तु ज्ञान दर्शनमें एक ही साथ दोनों भाव प्रतिबिंबित होते हैं। उन पांचों सम्यक्के कारण चेतना सम्यक् है और चेतना सम्यक्के कारण वे पांचों सम्यक् हैं।

कोई अज्ञानी दोनोंको भिन्न-भिन्न मानता है। उस अज्ञानीने (मान्यतामें) दोनों भावका नाश किया। कुछ भी वस्तुका अस्तित्व नहीं रहा। जैसे उष्णताभाव भिन्न अन्य स्थान कहना, अग्निभाव भिन्न अन्य स्थान कहना। तब वहाँ वस्तु तो न दिखाई दे। अतः वस्तुका अभाव होकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शून्यत्वका प्रसंग आता है। तथा तू ऐसा जान कि उष्णता भेदभाव, अग्नि अभेदभाव एक ही साथ है तथा वस्तु भी इसीप्रकार है। इस प्रकार भेद सम्यक्भाव अभेद सम्यक्भाव एक ही स्थान है। निःसंदेह वस्तु इसीप्रकार ज्ञानमें प्रतिबिंबित होती है। इस प्रकार भेद सम्यक्भाव अभेद सम्यक्भाव दोनों एक ही स्थान परिणमित होते हैं।

जब जिसकालमें जिस जीववस्तुको यह सम्यक्भाव प्रगट हुआ, वही जीव सत्त्व उसीकालमें भेद सम्यक्भावरूप, अभेद सम्यक्भावरूप एक स्थान ही परिणमित होता है, सम्यक्रूप परिणमित होता है, वे ही जीव सम्यक्भाव द्वारा भले प्रकार शोभाको प्राप्त होते हैं।

प्रथम ही प्रथम जब इस प्रकार कितने ही सम्यक्भावको धारण करके जीव प्रगट परिणमित हुआ, उतने भावरूप स्व—अपने आप केवल निर्विकल्प निःसंदेहरूपसे निजस्वरूप सिद्ध साक्षात् आत्मा प्रगट हुआ। इतने ही भावसे आत्मा निजस्वभावमें इतना स्थिर हुआ।

तथा अनादिसे जीववस्तु स्वभावरूपसे असिद्ध हो रहा था,—निज स्वधर्मसे च्युत हो रहा था। जितना आत्मा स्वभावरूप प्रथम प्रगट हुआ स्वरूपभावका जितना नमूना प्रथम प्रगट हुआ, उतने स्वरूपके नमूनेके प्रगट होनेसे जीववस्तुको निजस्वभाव जाति सिद्ध हुई, स्वधर्मने जीववस्तुका स्वरूप दिखलाया।

इस जीववस्तुका मूळ निजवस्तुस्वभाव मैं हूं। वस्तुके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वधर्मसे वस्तु साधी जाती है, यह मूल जीववस्तुका स्वभाव-भाव है। इतने स्वभावके नमूनेके प्रगट होनेसे यह प्रथम प्रगट हुआ।

तथा किसीने प्रश्न किया—जैसे सम्यक्त्वगुणको सम्यक् होना कहा, उसीप्रकार ज्ञानादिगुण सम्यक् न कहे, उन ज्ञानादि गुणोंकी कितनी ही शक्तियाँ सम्यक् हुईं कही, इसमें क्या भेद (रहस्य) है।

उत्तरः—यहां सम्यक्त्वगुण तो सर्व सम्यक् हो गया है, तथा ज्ञानादिक गुणोंकी कितनी ही शक्तियां सम्यक्रूप हुईं, ज्ञानादिगुणोंकी अन्य कितनी ही शक्तियां अबुद्धिरूप मलिन हैं। क्षीणमोह कालके अंतमें ज्ञानादिगुणोंकी सर्व अनंत शक्तियां सम्यक्रूप होंगी, तब ज्ञानादिगुण सर्व सम्यक् हुए कहलायेंगे।

पुनः अन्य प्रश्न—जो ज्ञानादि गुण क्षीणमोह कालके अंतमें सर्व सम्यक् होंगे तो वहाँ द्रव्यको ही सम्यक् नाम क्यों न कहा ?

उत्तर—हे भाई! उस कालमें सर्व शक्तियोंसे सर्व गुण तो सम्यक् हुए, परंतु द्रव्यके प्रदेशोंके कंपनरूप विकारसे भी द्रव्य कुछ मलिन है, तथा वह विकार भी अयोगी गुणस्थानके अंतमें नष्ट होगा, तब द्रव्य सर्वथा सम्यक्रूप होगा। त्रैलोक्य ऊपर केवल एक जीव द्रव्य अपने आप तिष्ठैगा। इति सम्यक् निर्णयः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२६) अथ साधकसाध्यभाव

जो साधता है वह उसीका साधकभाव जानना। जिस भावके प्रवर्तन हुए बिना आगेके अनंतर (उत्तर समयके) भावका प्रवर्तन न हो, उसी भावका (साधकभावका) प्रवर्तन काल हो—प्रवर्तित हो तभी उस आगेके भावका (साध्यभावका) प्रवर्तन अवश्य साधा जाता है। अन्य भावके प्रवर्तन (होने) पर वह (साध्य) नहीं साधता है।

कोई अज्ञानी इस प्रकार जानेगा उस आगेके भावको यह भाव अपने बलसे प्रवर्तन करता है, जोरावरीसे परिणमाता है; इस प्रकार साधकभाव मानना वह तो अनर्थ है।

साधकभाव इतना ही जानना कि वह (साध्य) भाव अपने बलसे प्रवर्तता है परंतु यह है, उस भावके प्रवर्तन कालमें इस (साधक) भावका भी प्रवर्तन होता है। इस प्रकार उस (साधक) भावका होना इस (साध्य) भावके होनेमें साक्षीभूत अवश्य होता है। उस भावको मात्र साधकभाव संज्ञा इस अवसर पर जानना।

जैसे दिन जब दोपहर रूप प्रवर्तता है, तब ही दुपहरिया पुष्प विकसित कार्यरूप प्रवर्तता है। यहाँ दुपहरिया पुष्प विकसित होनेमें दोपहर दिनका होना अवश्य प्रत्यक्ष साक्षीभूत है, ऐसा भाव साधक जानना।

साध्यका अर्थ—जो साधा जाय अथवा साधित हो उसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साध्य संज्ञा है। उस भावके होने पर अन्य भाव अवश्य ही प्रवर्तित हो, उस भावके होनेसे इस भावका होना अवश्य साधा जाता है अतः इस भावको साध्य कहते हैं। जैसे दोपहर होनेरूप साधकभावसे दुपहरिया पुष्पके विकासित-रूप होनेका कार्य साधा जाता है। इतने भावसे दुपहरिया पुष्पका विकसित होना साध्य कहलाता है।

साधक साध्यभावके उदाहरण

एक क्षेत्रावगाही पुद्गलकर्मोंका उदय सहज ही स्थितिरूप होता है वह साधकस्थाव जानना और उस होवेकी स्थिति तक चित्विकार होनेका प्रवर्तन पाया जाता है वह साध्य भेदरूप जानना।

सम्यक्त्वविकार साधक, बहिरात्मा साध्य है, प्रथम सम्यक्भाव होना साधक, वस्तुस्वभावजाति सिद्ध होवा साध्य है। शुद्धोपयोग परिणति होना साधक है, वस्तुका परमात्मस्वरूप होना साध्यभाव है। सम्यग्दृष्टिके व्यवहार रत्नत्रयका युगपत् होना साधक है, निश्चय रत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टिके विरतिरूप व्यवहार परिणति होना साधक है, चारित्रशक्ति मुख्यस्वरूप होना साध्य है। देव, गुरु, शास्त्रभक्ति विनय, नमस्कारादिभाव साधक हैं, विषय-कषाय आदि भावोंसे हटकर मन परिणतिका स्थिरताभाव साध्य है। एक शुभोपयोगकी व्यवहार परिणतिकी रीति–होना साधक है, परंपरा मोक्ष परिणति होनी साध्य है।

अन्तरात्मारूप जीवद्रव्य साधक है, अभेद स्वयं ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमात्मरूप जीवद्रव्य साध्य है। ज्ञानादिशक्ति मोक्षमार्गरूपसे साधक है, अभेद स्वयं ही ज्ञानादि गुण मोक्षरूपसे साध्य है। जघन्य ज्ञानादि भाव साधक है अभेद स्वयं ही उन्हीं ज्ञानादि गुणोंका उत्कृष्टभाव साध्य है। स्तोक निश्चय परिणतिसे ज्ञानादिगुण साधक हैं, अभेद स्वयं ही बहुत निश्चय परिणतिरूपसे ज्ञानादिगुण साध्य हैं। सम्यक्त्वी जीव साधक है, उस जीवके सम्यक्ज्ञान, दर्शन, सम्यक्चारित्र साध्य है, गुण मोक्ष साधक है, द्रव्यमोक्ष साध्य है। क्षपकश्रेणी चढ़ना साधक है, तद्भव साक्षात् मोक्ष साध्य है।

तथा द्रव्य यति और भाव यतिपनाका व्यवहार साधक है, साक्षात् मोक्ष साध्य हैं। ×भावितमनादि रीति विलय साधक है, साक्षात् परमात्मा केवलरूप होना साध्य है। पौद्गलिक कर्म खिरना (झड़ना) साधक है, चित्विकारका विलय होना साध्य है। परमाणुमात्र परिग्रह प्रपंच साधक है, ममताभाव साध्य है। मिथ्यादृष्टि होना साधक है, संसार-भ्रमण होना साध्य है, सम्यग्दृष्टि होना साधक है, मोक्षपद होना साध्य है। जब काललब्धि साधक है, तब द्रव्यको वैसा ही भाव होना साध्य है। इस प्रकार साधक-साध्यभाव भेद–अभेदरूपसे बहुत प्रकारसे जानना।

इति साधकसाध्य अधिकारः

× भावितमनके विकार विलय होनेपर साक्षात् मोक्ष होता है।
(अनुभवप्रकाश)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२७) मोक्षमार्ग अधिकार

जब प्रथम ही काललब्धि प्राप्त होनेपर सम्यक्‌गुण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, परमानन्द, भोगादि गुणोंकी जितनी शक्ति निर्मलरूप होकर प्रवर्तित हुई। जीवद्रव्य उतने ही निजधर्मसे सिद्ध हुआ। तबसे जीवको मुख्यतः सम्यग्दृष्टि संज्ञा कहते हैं, अथवा ज्ञानी भी कहते हैं, तथा दर्शन, चारित्रादि स्वभाव सज्ञासे भी जीवको कहे तो कोई दूषण नहीं है, परन्तु लोकोक्तिमें सम्यग्दृष्टि जीवको उपरोक्त मुख्य संज्ञा (ज्ञानी)से कहते हैं।

ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके जबसे ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि स्वभावरूप प्रगट हुए तबसे मोक्षमार्ग प्रारंभ हुआ–प्रवर्तित हुआ। (परन्तु एक बात है) तबसे मुख्य चारित्रगुणकी शक्तियोंका स्वभावरूप परिणमित होनेका विवरण। उसमें मन, वचन, कायका प्रथम कहते हैं–

मिथ्यात्व गुणस्थानमें तो एक मुख्य विषय–कषायादि अनर्थ पापरूप अशुभोपयोगरूप मनादिमें प्रवर्तता है तथा चौथे गुणस्थानसे देव-गुरु-शास्त्रादि प्रशस्तोंमें भक्ति, विनय-रूप शुभोपयोगरूप–मनादिकी वृत्ति मुख्य जैसी होती है तथा विषय–कषाय हिंसादिरूप अशुभोपयोगरूप मनादिकी वृत्ति भी अपने–अपने कालमें होती है।

इसके पश्चात् पांचवें गुणस्थानमें विरति–व्रतादिरूप शुभोपयोगरूप मनादिकी वृत्ति मुख्य प्रवर्तती है तथा कधी गौणरूपसे अशुभोपयोगरूप भी मन आदि (वृत्ति)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवर्तती है। छठवें गुणस्थानमें यह भोग, कांक्षा, कषाय, हिंसादिरूप अशुभोपयोगरूप मनादिकी वृत्ति सर्व नाश जैसी हो जाती है। तथा सर्व विरति–सर्वव्रत निर्ग्रंथ क्रियामें यह जो सर्व संयम, द्वादशांग अभ्यास, देव-शास्त्र-गुरु भक्ति क्रियादिरूप, एक केवल ऐसे शुभोपयोगरूप मनादिकी वृत्ति प्रवर्तती है। यहाँ इतना विशेष जानना कि–चौथे गुणस्थानसे छठवें गुणस्थान तक स्वस्वभाव अनुभवरूप शुद्धोपयोगकी भी कुछ कुछ कदाचित् कदाचित् मनकी वृत्ति प्रवर्तित होती है—ऐसा जानना।

सातवें गुणस्थानमें शुभोपयोगरूप मनादिकी वृत्ति नाश होती है तथा केवल एक शुद्धोपयोग–स्वअनुभवरूप उत्पन्न होता है उसका विवरण—

इस कायकी चेष्टा–हलन, चलन, गमन, उठना, बैठना, कांपना, फड़कना, जंभाई, छींक, उद्गारादि सब काय चेष्टा थी वह नष्ट हुई। काष्टकी प्रतिमावत् स्वयं ही पद्मासन या कायोत्सर्ग आकार हुआ। काय इंद्रिय, रीति, विषयवांछा थी वह नष्ट हो गई। निश्चल काष्ठ प्रतिमा और इसमें कुछ भेद नहीं रहा। काष्ठ प्रतिमावत् जब शरीरकी दशा हुई तब वचन क्रिया थी वह सहज ही रुक गई। यदि वह काष्टकी प्रतिमा बोले तो वहाँ यह अप्रमत्त साधु भी बोले (अवाची काष्ट प्रतिमावत्।)

यहाँ अष्टदलरूप द्रव्यमन भी निष्कंप हो गया, द्रव्य पौद्गलिक मन आदिकी रीति (क्रिया) तो इसप्रकार सहज ही स्थगित हो गई। तथा जीवके ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकाररूप होकर विषयोंहीके ऊपर-इंद्रवत् इन्द्रियके मार्गसे प्रवर्तंते थे, वे शरीर इन्द्रियोंका अभ्यास–मार्गप्रवर्तन छोड़कर एक स्ववस्तुभाव अभ्यासरूप मार्गमें प्रवृत्त हुए।

तथा जीवके ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि विभावरूप होकर वचनविषयमें प्रवर्तंते थे, वे (परिणाम) भी वचन-अभ्यासरूप मार्ग छोड़कर एक स्ववस्तुभाव अभ्यासरूप मार्गमें परिणमित हुए, प्रवृत्त हुए। तथा जीवका ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिरूप भावमन विकाररूप होकर अष्टदल कमलस्थानमार्गसे अनेक इष्ट-अनिष्ट लाभ–अलाभ, अशुभ–शुभोपयोगादिभावरूप विकल्प समूहोंमें चंचल अभ्यासरूप प्रवर्तता था, वह भावमन एक स्ववस्तुभाव सेवनके लिये अनुभवरूप प्रवृत्त हुआ। अन्य सर्व विकल्प चिंताओंमें था उससे मुक्त हुआ, और वह एक स्ववस्तुभाव अनुभव करनेमें प्रवृत्त हुआ।

इसप्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि विकाररूप मन, वचन, काय, व्यवहारपरिणतिरूप था वह नष्ट हो गया, एक स्ववस्तुभाव सेवनरूप अनुभवनरूप निश्चयसंयुक्त हुआ, तब उसे ही संयमी, शुद्धोपयोगी तथा प्रधान अनुभवी कहते हैं। वहाँ परभावोंका अर्थात् व्यवहार परिणतिका सर्व सेवन मिट गया, एक केवल आत्मस्वरूपके अनुभव निश्चयरूप परिणति प्रवृत्त हुई। इसप्रकार यह मनादिकी वृत्तिका स्वरूपमें एकाग्रतारूप वह शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ।

जब यह शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ, तब यश, अपयश,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाभ-अलाभ, इष्ट-अनिष्ट आदि सर्वभावोंमें समानभाव हो गया। समानपने (मुख्यतासे) कोई आकुलता शेष नहीं है।

जब यह शुद्धोपयोग प्रगट हुआ, तबसे परमात्म-सुखका अतीन्द्रियस्वाद प्रगट होता जाता है। इसप्रकार जब शुद्धोपयोगका कारण उत्पन्न हुआ, तभीसे मुख्यरूपसे साक्षात् मोक्षमार्ग कहते हैं। तथा तभीसे चारित्रगुणकी मुख्यतासे मोक्षमार्ग जानना।

सातवें गुणस्थानसे जैसे-जैसे आगेका [अग्रिम गुण-स्थावोंको] काल आता है, उस-उस कालमें चारित्रादि गुणोंकी अनेक अनेक शक्तियां पुद्गल वर्गणाके आच्छादन और चित्‌विकारसे मुक्त हो-होकर साक्षात् निश्चय निजस्वभाव शक्तिरूप परिणमित होती जाती हैं। इसीप्रकार जैसे-जैसे आगेका काल आता है, वैसे-वैसे चारित्रादि गुणोंकी अनेक अनेक शक्तियां पुद्गलवर्गणाके आच्छादन और चित्‌विकारसे मुक्त हो-होकर साक्षात् विज-निजस्वभाव शक्तिरूप होती जाती हैं। इसप्रकार समय समयमें चारित्र शक्तियोंका मुक्तरूप होनेका प्रवाह प्रति समय समय बढ़ता जाता है।

वह शुद्धशक्ति ही मोक्षमार्ग अवस्था जानना। यह मोक्षमार्ग वर्तते-वर्तते जब क्षीणमोह अवस्था आई, तबसे मवादिकी रीति. परिणति, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्ति स्ववस्तु अभ्यासरूप शुद्धोपयोगरूप थी। तथा किंचित् ज्ञान दर्शन चारित्रादि शक्ति अबुद्धिरूप व्यवहारपरिणतिरूप थी, वे शक्तियां सर्वथा मुक्त होकर निजजाति स्वभावरूप निश्चय परिणतिरूप `होती गईं। आत्म—अभ्यासभाव भी मुक्त होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते उस क्षीणमोह अवस्थाके अंतके समयमें ही चारित्रगुणकी सर्व ही अनंतशक्तियां मोह पुद्गल आच्छादन और विकारसे मुक्त होकर निजवस्तुस्वभावरूप हुई। जब चारित्रगुणकी (सर्व ही) अनंतशक्ति निजवस्तुस्वभावमें ठहकर स्थिरीभूत हुई, तब ही चारित्रगुण मोक्षरूप उत्पन्न हुआ कहा जाता है।

तब ही परमानंदभोगगुणकी सर्व ही अनंतशक्ति मुक्त होकर निजवस्तुस्वभाव आस्वादभोगरूप उत्पन्न हुई, वहाँ भोगगुण मोक्षरूप उत्पन्न हुआ कहा जाता है। तब ही ज्ञान, दर्शन, वीर्यादि गुणोंकी अनन्त-अनन्तशक्ति मोक्षरूप उत्पन्न हुई। उसकी स्तुति—

सर्व लोकालोकका प्रत्यक्ष ज्ञायक-दर्शक हुआ, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हुआ, लोकालोक प्रतिबिंबित हुआ, अतीत, अनागत, वर्तमानकी अनंत-अनंत पर्याय सर्व प्रत्यक्षरूपसे एक ही साथ उत्कीर्ण (आलेखित) हुईं। ज्ञान दर्शन संपूर्ण स्वरूपरूप हुए। इसप्रकार एक भव अवतारीको ज्ञान, दर्शन, वीर्यादिगुण मोक्षरूप उत्पन्न हुए।

अप्रमत्त अवस्थासे चारित्रादि गुणोंकी शक्तियोंका मोक्षरूप होनेका मार्गप्रधानतासे आरंभ हुआ था, वह मार्ग यहाँ परिपूर्ण होकर उत्पन्न हुआ। वे चारित्रादिगुण मोक्षरूप निष्पन्न हुए तब गुणमोक्ष संपूर्ण हुआ। इति गुणमोक्षमार्ग विवरणं। गुणमोक्षमार्ग चौथे गुणस्थानसे प्रारंभ हुआ था, बारहवें गुणस्थानके अंत तक संपूर्ण हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२८) अन्तर्व्यवस्था कथन

ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियोंका कर्मानुभवसे भेदभाव होना—पृथक् होना, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियोंका स्वरूपमें आना तथा तीनों शक्तियोंके विकारका नाश होना; ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियोंकी निश्चय परिणति होना; ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियोंकी व्यवहार परिणतिका विलय होना; ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियोंकी शुद्धताकी उत्कृष्ट वृद्धि होना; ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियोंकी अशुद्धताकी हानि होना; ज्ञानगुणकी शक्तियोंका एकाकार जाननेरूप सम्यक् होना; दर्शनगुणकी शक्तियोंका एक अनाकार जाननेरूप सम्यक् होना; चारित्रगुणकी शक्तियोंका एक स्ववस्तु-रूपमें आचरण-स्थिरता-विश्राम सम्यक्रूप होना इत्यादि जीवके सर्वभावोंका प्रारंभ चौथे गुणस्थानसे होता है। तथा बारहवें गुणस्थानके अंत तक संपूर्ण भाव होता है।

निःशंकरूपसे ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुणोंका जघन्य भाव; ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि शक्तियोंका साक्षात् क्षयोपशम होनेरूपभाव, अंतरात्मभाव, सविकल्पभाव, स्वरूपशक्ति परिणाम, विकारशक्ति परिणाम इत्यादि मिश्रभाव जीवको चौथे गुणस्थानसे लेकर बारहवें गुणस्थान तक रहता है।

चौथे गुणस्थानसे जब चारित्रगुणकी जो जो शक्तियां निर्विकल्प अर्थात् बुद्धिपूर्वक राग, द्वेष, विकारसे निवृत्त हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो कर, साक्षात् निजस्वरूप होकर केवल परिणमित होती है उस काल उन शक्तियोंको तो कोई आस्रव-बंधका प्रश्न ही नहीं उठता, वे शक्तियां तो स्वरूपसे सिद्ध हो जाती हैं। उसी कालमें उन शक्तियोंको तो कोई विकल्प लगता ही नहीं है; परन्तु चौथे गुणस्थानसे सम्यग्दृष्टिके चारित्र-गुणकी शक्ति जब बुद्धिपूर्वक विकल्परूप हो परिणमित होती है अर्थात् जब विषय, कषाय, भोग-सेवनरूप, इष्ट रुचि, अनिष्ट अरुचि, हिंसारूप, रति—अरतिरूप, अविरति रूप, परिग्रह विकल्परूप आदि अथवा शुभोपयोग विकल्प-रूप आदिसे बुद्धिपूर्वक जो शक्ति परिणमित होती है तब परावलंबन चंचलतारूप मलिन भी होती है, तो भी उस शक्ति द्वारा ज्ञानी आस्रव—बंध विकारको उत्पन्न नहीं करता। किस कारणसे? क्योंकि सम्यग्दृष्टि अपनी बुद्धिपूर्वक विकल्परूप चारित्र चेष्टाको जाननेमें समर्थ है। उस चेष्टाको जानते ही सम्यग्दृष्टिको विषय—भोगादिभाव विकाररूप भिन्न ही प्रतिबिंबित होते हैं तथा चेतना-स्वभावभाव भिन्न प्रवर्तते हैं। एक ही कालमें सम्यक्-ज्ञानीको भिन्न—भिन्न प्रत्यक्ष होते हैं। इस कारणसे उस चारित्रशक्तिमें बुद्धिपूर्वक राग, द्वेष, मोह, विकार प्रवेश नहीं करता।

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि बुद्धिपूर्वक विकल्परूप परिणतिसे भी सर्वथा बारहवें गुणस्थान तक निरास्रव—निर्बंध प्रवर्तता है। तथा उसी सम्यग्दृष्टिके चेतना विषय, कषाय, भोग,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिंसा, रति, अरति आदि अबुद्धिरूप परिणमते हैं, वे जघन्यज्ञान–सम्यक् मतिज्ञान और सम्यक् श्रुतज्ञानके गोचर नहीं होते; अज्ञान सहित हैं अतः अबुद्धि शक्तियोंमें राग, द्वेष, मोह विद्यमान हैं। अतएव अबुद्धिरूपसे किंचित्मात्र चौथेसे दसवें गुणस्थान तक आस्रव–बंधभाव उत्पन्न होता है। जीवके ज्ञानादिगुण व्यवहार परिणति ×अशुद्ध परिणति, अबुद्धि तथा बुद्धिरूप परिणतिरूप दसवें बारहवें गुणस्थान तक परिणमित होते हैं। इति अंतर्व्यवस्था कथन।

(२९) सम्यग्दृष्टि सामान्य विशेषाधिकार

तथा सम्यग्दृष्टि जीवके स्वस्वरूप निर्विकल्प अनुभव बुद्धि–परिणतिमें एक परमाणु भी रागादि विकार नहीं है तथा सामान्यसे सम्यग्दृष्टिको, ज्ञानीको, चारित्रीको इसी-प्रकार कहा जाता है। मुख्यरूपसे निर्बंध, निरास्रव, निष्परिग्रह, शुद्ध, भिन्न, परमाणुमात्र रागादिरहित कहे जाते हैं, शुद्ध–बुद्ध कहे जाते हैं। विकारका होना नहीं कहा जाता, क्योंकि जैसे सामान्यसे सर्व चेतनद्रव्य वंदनीक ही कहे जाते हैं, निंदित कोई नहीं है।

तथा विशेष भेद करने पर ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि जघन्य होनेसे सम्यग्दृष्टिको कथंचित् अबुद्धिपूर्वक आस्रव, बंध, सरागादि, विकार मिश्रित जीवद्रव्य कहा जाता है तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि उत्कृष्ट होनेसे सम्यग्दृष्टिको

× अशुद्धपरिणति = उस भूमिकाके योग्य भावकर्म, व्यक्त अव्यक्त प्रमादादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वथा, सर्व प्रकारसे साक्षात् निबंध, निरास्रव, वीतरागी, निष्परिग्रही जीवद्रव्य कहा जाता है। जैसे स्पर्श करके आमोंका भेदके द्वारा निर्णय करनेपर कोई आम किसी अंशसे कच्चेपनेके कारण मिश्रित भी कहा जाता है परन्तु सामान्यसे वे ही आम निःसंदेह सर्वथा पके हुए कहे जाते हैं।

इति सम्यग्दृष्टि सामान्य विशेषाधिकारः

हे भव्य ! तू इस प्रकार जान—जो पौद्‌गलिक पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्षको तो जीव तीन कालमें, कभी भी बिलकुल भी स्पर्श नहीं करता। यद्यपि एकक्षेत्रावगाही भी है, तथापि जीवने उनको कभी भी स्पर्श नहीं किया है।

तथा जो यह दश प्रकारका परिग्रह पुद्‌गल है—गृह, क्षेत्र (खेत) बाग, नगर, कुएं, वापी (बावड़ी), तड़ाग (तालाब), नदी आदि आदि सर्व पुद्‌गल; माता, पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्री, वधू, बंधु, स्वजन, मित्र आदि सर्व; सर्प, सिंह, व्याघ्र, हाथी, भैंसा आदि सर्व दुष्ट, अक्षर शब्द, अनक्षर शब्द आदि सर्व शब्द; खान, पान, स्नान, भोग, संयोग, वियोग आदि सर्व क्रिया; परिग्रह मिलाप वह बड़ा परिग्रह, परिग्रह नाश वह दरिद्र आदि सर्व क्रिया: चलना, बैठना, हिलना, बोलना, कांपना आदि सर्व क्रिया; लड़ना, भिड़ना, चढ़ना, उतरना, कूदना, नाचना, खेलना, गाना, बजाना आदि सर्व क्रिया; इस प्रकार इन सर्वको तू पुद्‌गल स्कंधोंका ही खेल जानना। इनको इस जीवने कभी भी तीन कालमें स्पर्श नहीं किये। यह तू निःसंदेह जानना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालके निमित्तसे ये पुद्गल स्वयं आते हैं, स्वयं जाते हैं, स्वयं मिलते हैं. स्वयं बिछुड़ते हैं, अपने आप पुद्गल संबंधसे बँधते हैं, आपनें आप पुद्गल घातक होकर घट जाते हैं। देखो ! इन पुद्गलोंका भी अपनें पुद्गलकी जातिसे तो संबंध है, परन्तु इस जीवको ये पुद्गल तीनकालमें कभी भी स्पर्शित नहीं हुए। अपने आप ही पुद्गल खेलता है।

हे संत ! जब यह जीव अज्ञानादि विकाररूप प्रवर्तता है, तब इस पुद्गलके खेलको भी देखकर जीव अपनें परिणामोंमें ऐसा मानता है। 'ये सर्व कार्य मेरे करनेसे हुए हैं,' यही चित्‌विकारका माहात्म्य जानों। हे संत ! स्वयं उसको कभी स्पर्श नहीं किया और वह इसको कभी भी स्पर्श नहीं करता। उसको देख जान कर "मैं करता हूं, इससे सुख प्राप्त करता हूं, इससे खेद प्राप्त करता हूं" ऐसा जीवको प्रत्यक्ष झूठा भ्रम हो गया है। ऐसा तू जान।

हे भव्य ! ज्ञानी इस प्रकार निश्चयसे देखता है जानता है–

सर्व पौद्गलिक वर्ण, रस, गंधादिकोंसे उत्पन्न हुए इस सर्व खेल अखाड़ेसे अपना कुछ भी संबंध नहीं देखता है क्योंकि यह पौद्गलिक नाटक अन्य द्रव्यका उत्पन्न हुआ है, यह नाटक मूर्तिकका बना है. यह नाटक अचेतनोंका उत्पन्न हुआ है तथा यह नाटक तो अनेक द्रव्य मिलकर प्रवर्तता है अतः इससे तो मेरा किसी भी प्रकारसे संबंध तीनकालमें होता दिखाई नहीं देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि मैं तो जीवद्रव्य, मैं तो अमूर्तिक, मैं तो चेतन-वस्तु, मैं तो एक सत्त्व, मैं तो इस प्रकार और वह उस प्रकार (अजीव, मूर्तिक, अचेतन); मुझमें और उसमें पूर्ण और रिक्त जैसा अंतर है; प्रकाश, अंधकार जैसा अंतर; मुझमें कहीं भी उसके समान संबंध दिखाई नहीं देता। अतः उसके नाटक कार्यका मैं न कर्त्ता हूं, न हर्त्ता हूं, न भोक्ता हूं, किसी कालमें न हुआ था, न होऊँगा और न वर्तमानमें भी हूं।

तात्पर्य यही है, ज्ञानी परद्रव्यमें अपना संबंध सर्वथा कुछ भी नहीं देखता है। अतः इस पुद्गलका नाटक जिस प्रकार जाननेमें आया है, उस प्रकार नाचे तो नाचो। (वह नाटक) स्वयमेव ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही नष्ट होता है, स्वयं ही आता है, स्वयं ही जाता है, मैं न इसके नाटकको रख सकता हूं, न छोड़ सकता हूं। इस नाटकके रखने छोड़नेकी चिंता भी झूठी है क्योंकि यह परवस्तु है। अपने गुण पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, कर्त्ता, कर्म, क्रियादि सामग्रीसे स्वाधीन है। इसीप्रकार जीव, पुद्गल सर्वथा भिन्न हैं और इसीप्रकार भिन्न प्रवर्तते हैं। उसीप्रकार ज्ञान होनेसे ज्ञानी जीव पर पुद्गलको भिन्न देखता जानता है। तथा ज्ञानी इस जीवको इस प्रकार देखता जानता है—

जब तक यह जीव विकारवंत प्रवर्तता है तब तक जो कुछ जिस भांतिकी विकारकी तरंग प्रगट होती है उन्हीं तरंगोंसे व्याप्यव्यापक है, उनका कर्त्ता, हर्त्ता और भोक्ता है। वह विकार एक केवल चेतनाकी ऊपरी दशाका नाम है तो भी वह विकार अमूर्तिक है, एक जीवका ही भाव है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवसे अभेद है। तात्पर्य यह है–वह सर्व विकार जीव-भावजन्य है (जीवभावसे उत्पन्न हुआ) और संक्षेपसे तो इस भावको चिद्विकार कहते हैं तथा इस चेतन विकारकी तरंगोंके स्वांगोंका जैसा-जैसा नाम होता है वैसा विशेषरूपसे कहते हैं—

जो-जो पुद्गलमें मूर्तिक स्वांग होता है, उस काल उन स्वांगोंके अनुसार जीवके अमूर्तिक विकार तरंग स्वांग धारण कर प्रवर्तता है। इस विकारके स्वांगका नाम परभाव कहलाता है; क्योंकि इन स्वांगोंके भेद जीववस्तुमें तो नहीं थे, अतः (इन्हें) निजके कैसे माने ? क्योंकि मूलसे यह जीव दृष्टा–ज्ञाता था अतः इसके दर्शन ज्ञान उपयोगमें मूर्तिक नाटक ज्ञेयस्वांग प्रतिभासित होते हैं। प्रतिभासित होते ही उस कालमें ज्ञान–दर्शनकी शक्ति उसी प्रकार तदाकार ज्ञेयप्रतिभासरूप हुई अर्थात् उस काल उसी आकारमें विश्राम किया अथवा उपयोगशक्तिका आचरण (स्थिरता) उस ज्ञेयप्रतिभासरूप हुआ। आत्मा स्वयं उस आकाररूप हुआ। तब वह उपयोग न देखता है, न जानता है। उस ज्ञेय आकाररूपसे स्वयं आचरण करता है अर्थात् उसमें आपरूप स्थिर होकर रहता है।

हे संत ! तू जान, ज्ञान–दर्शन–चारित्र द्वारा परज्ञेय भासित होनेपर जीव इस प्रकार स्वांगी होता है क्योंकि इस जीववस्तुमें तो ऐसा स्वांग ही नहीं था। अतः इस भावको जीवका निजभाव कैसे कहें ? इस जीवने स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर ज्ञेयभासका स्वांग धारण कर लिया है, इस कारण इस जीवमें इस स्वांगभावको परभाव कहते हैं। अब उन स्वांगोंके नाम संज्ञाभेदसे कहता हूं। वह तू सुन—

देखो, इस पुद्गलके अखाड़ेमें मूर्तिक अचेतनका स्वांग बना है, भले (शुभ) वर्ण, रस, गंध. स्पर्शादिकके बने स्कंध पुण्यस्वांग; बुरे (अशुभ) वर्ण, रस, गंध, स्पर्शादिकके बने स्कंध सो पापस्वांग; मोहादि द्वारा कर्मवर्गणा आनेका राह बना वह आस्रवस्वांग; चिकनी-रूखी शक्तियोंसे परस्पर वर्गणाऐं मिलकर एक पिंडरूप बनना वह बंध-स्वांग; वर्गणा आनेका मार्ग रुक जाना वह संवरस्वांग; थोड़ी-थोड़ी वर्गणा अपने स्कंधसे खिर जाना निर्जरास्वांग; सर्व वर्गणा खिर जाना मोक्षस्वांग; इतने स्वांग एक-क्षेत्रावगाही पुद्गल ज्ञेयके अखाड़ेमें बनते हैं, वैसे-वैसे ही स्वांग इस विकारी जीवके ज्ञान, दर्शन, चारित्रके द्वारा अमूर्तिक उत्पन्न हुए. किस प्रकार ?

जिस काल उपयोगपरिणाम एकक्षेत्रावगाही पौद्गलिक पुण्यज्ञेयको देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामोंके आकाररूप सुख जैसे विश्रामरूप अथवा सुख जैसे रंजनारूप हुए तब इस प्रकार अमूर्तिक पुण्यस्वांगभेद जीवके उत्पन्न हुआ।

तथा जिस काल उपयोगपरिणाम एकक्षेत्रावगाही पापज्ञेयको देखने-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामोंके आकाररूपसे संताप, दुःख विश्रामरूप अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःख रंजित हुए, तब इस प्रकार अमूर्तिक चेतन पाप स्वांग भेद जीवीके उत्पन्न हुआ।

तथा एकक्षेत्रावगाही (पुराने कर्म) पौद्गलिक मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग, आस्रवका स्वांग बना है। इस जीवके उपयोग परिणाम उस ज्ञेयके देखने जानने-रूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामोंके आकाररूप विश्राम अथवा रंजित हुए। तब उन रंजित परिणामरूप परिणमित होते हुए नये-नये सुखाभासरूप दुःख संताप, दुःखोंके रसस्वाद उत्पन्न होने, उस रसस्वाद होनेके अथवा उस रसस्वाद आनेके कारण, मार्ग अथवा द्वारको आस्रव नामसे कहते हैं। इस प्रकार उस भावका अमूर्तिक चेतन जीवके आस्रव स्वांगभेद उत्पन्न हुआ।

तथा नयी-नयी वर्गणा आनेके मार्ग पौद्गलिक मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग नष्ट होनेसे नवीन वर्गणा नहीं आती है। इस मार्गका नष्ट होनेका नाम पौद्गलिक संवर स्वांग है। इस जीवके उपयोग परिणाम ज्ञेयके देखने जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामोंके आकार-रूप विश्राम अथवा रंजित हुए। वह रंजित परिणाम नया-नया सुखाभासरूप दुःख है और दुःख होनेका कारण है। उस रंजितभाव नहीं होता तब उसके न होनेके नाम अमूर्तिक जीवके संवर भेद उत्पन्न हुआ।

पौद्गलिक परमाणुओंका स्निग्ध स्निग्ध रुक्ष रुक्ष, स्निग्ध रुक्ष भाव द्वारा एकसे दूसरेमें दो गुण अधिक होनेपर—मिलनेसे परस्पर संबंध होता है; उस चिकने रूखेसे पौद्-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गलिक बंध स्वांग बनता है। इस जीवके उपयोग परिणाम ज्ञेयके देखने जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन्हीं परिणामोंके आकाररूप विश्राम अथवा रंजित हुए। तब उपयोगोंके जो ज्ञेयाकाररूप परिणाम रंजित होते हैं, उन परिणामोंके आकारोंसे संबंध करनेवाला रंजन—राग होता है उस ज्ञेय आकारसे संबंध करनेवाला रंजन राग होता है ज्ञेय आकारसे रंजितपना (एकता) होता है वह अमूर्तिक चेतन जीवका बंध स्वांग भेद होता है।

तथा पौद्गलिक कर्मस्कंधसे वर्गणाका अश-अंश खिर जावा पौद्गलिक निर्जरा स्वांग है। इस जीवके उपयोग परिणाम परज्ञेय देखने जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम उन परिणामोंके आकाररूप विश्राम अथवा रंजितरूप हुए, इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र, परज्ञेय आकारभाससे अशुद्ध परभावरूप हुए हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिकोंका परभाव-रूप (—अशुद्ध) परिणमन जब थोड़ा-थोड़ा नष्ट होता जाता है वह अमूर्तिक चेतन जीवका संवर पूर्वक निर्जरा स्वांग भेद है।

तथा पौद्गलिक सर्व कर्म स्कंधोंका जीव प्रदेशोंसे सर्वथा पृथक् होकर खिर जाना पौद्गलिक मोक्षस्वांग है। इस जीवके उपयोग परिणाम परज्ञेय देखनें-जाननेरूप हुए और चारित्रपरिणाम भी उन परिणामोंके आकाररूप विश्राम अथवा रंजनारूप हुए। इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र परज्ञेय आकारभावसे अशुद्ध परभावरूप हुए हैं। जीवद्रव्यके ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिकका परभावरूप जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणमन था वह सर्व सर्वथा नष्ट हो जाना वही अमूर्तिक चेतन जीवका मोक्षस्वांग भेद कहलाता है।

इस प्रकार ज्ञानी चेतन अमूर्तिक जीवके इस नाटकको पुण्य, पाप, आस्रव, संवर. बंध, निर्जरा, मोक्षरूप एक क्षेत्रावगाह पुद्गल नाटकसे भिन्न ही देखता है। पुद्गलसे रंचमात्र भी संबंध नहीं देखता है। जैसेका तैसा जीव नाटक भिन्न देखता है और फिर अपना (जीवका) नाटक देखता है, वह क्या ?

यह जो एकक्षेत्रावगाही पौद्गलिक वस्तु कर्म नाटक बना है, वैसा ही इस जोवका परभाव नाटक बना है। वैसा ही सो किस प्रकार? पौद्गलिक मूर्तिक अखाड़ेमें वर्गणा, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, कर्मसंज्ञा स्वांगधारण कर नृत्य करती है। तब उसके अनुसार मान्यता (परिणाम) इस जीवके भी देखे जाते हैं। नाटक किस प्रकार ?

ज्ञान और दर्शनहीका परम निजजातिस्वभाव सर्व लोकालोकको युगपत् सर्व ज्ञेयोंको एक समयमें जानना देखना होता है। यह तो ज्ञान-दर्शनका निजस्वभाव है। अथवा इसको कोई ज्ञान, दर्शन मात्र हो कहता है। तथा जब इस प्रकार लोकालोकका जानना देखना नहीं हो तब वह ज्ञान-दर्शनगुणोंका सर्वको नहीं जानने, नहीं देखनेरूप भाव अशुद्धभाव है, परभाव है अथवा स्वभावका आवरण है। उस कारण इन (शुद्ध-अशुद्ध) दोनों भावको ज्ञान-दर्शन गुण व्याप्य-व्यापक होते हैं। निजभाव सम्यक्रूप और परभाव विपरीतरूप होनेपर ज्ञान-दर्शन वस्तु इन दोनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावोंमें प्रत्यक्ष है।

अतः देखो मित्र! एक ज्ञान–दर्शन ही निजभावरूप भी और परभावरूप भी होता है। जब तक ज्ञान–दर्शन परभाव अथवा आवरणभावरूप व्यक्त प्रवर्तते हैं, तब तक ज्ञान, दर्शनगुण निजभाव (अथवा वस्तु नामभाव) रूप नहीं प्रवर्तते हैं। अतः उस परभावके रूप व्यक्त प्रवर्तनसे निजभाव प्रवर्तनकी व्यक्तता आच्छादित है। अतएव ज्ञान, दर्शन-स्वभावोंको परभावकी व्यक्ततारूप आवरण कार्य उत्पन्न हुआ।

तब देखो, यह ज्ञान स्वयं ही आवरणरूप बना है अतः उसको ज्ञानावरण कार्य अमूर्तिक चेतनस्वांगभेद उत्पन्न हुआ है तथा यह दर्शन स्वयं ही आवरणरूप बना है; अतः उसको दर्शनावरण कार्य अमूर्तिक चेतन स्वांगभेद उत्पन्न हुआ है।

तथा पौदुगलिक कर्म अखाड़ेमें कटुक स्वाद वर्गणा मिलकर असाता तथा मिष्ट स्वाद वर्गणा मिलकर साता इस प्रकार मूर्तिका अचेतन वेदना संज्ञा स्वांग बना है। इस जीवके उपयोगपरिणाम साता अथवा असाता ज्ञेय देखने जाननेरूप हुए और चारित्र परिणाम भी उन परिणामोंके आकाररूप पर विश्राम अथवा रंजनारूप हुए तथा उन्हीं चारित्रपरिणामोंके भावोंके ही अनुसार भोगगुणके हुए परिणाम भोगनेरूप अथवा ज्ञेयभास आस्वादरूप वा वेदनेरूप अथवा विपरीत भावरूप हुए। इस प्रकार ज्ञेयभास भोगनेरूप विपरीत परिणामोंको वेदन करने रूप कार्य बना है, यह भी इस प्रकार जीवके अमूर्तिक चेतन वेदनास्वांग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३८४९

तथा उस पौद्गलिक अखाड़ेमें मोह उन्मत्त प्रमादरूप वर्गणा स्वांग धारण करके नृत्य करता है। और उस मोहमें जातिभेद बहुत होते हैं। उनमें एक मोह वर्गणा तो सम्यक्त्व मोह संज्ञा धारण कर उन्मत्त नृत्य करती है। इस जीवके सम्यक्त्वगुणका निजस्वभाव निजसत्त्व वस्तुकी निजजातिरूप अपना आस्तिक्य-यथार्थतारूप-यादरूप आचरण है। यह सम्यक्त्वका भाव है और वही सम्यक्त्व है। उपयोग द्वारा ज्ञेय देखा जाना जाता है, उस ज्ञेय वस्तुको अथवा एक प्रकारको सर्वथा स्ववस्तुरूप आस्तिक्य आचरणरूप व्याप्यव्यापक होता है वही सम्यक्त्व-आचरणगुणका ऊपरीभाव (विपरीतभाव) है; सम्यक्त्वका परभाव है, मिथ्यामोहभाव है अथवा मोहभाव है। इस प्रकार सम्यक्त्व आचरण गुणका इस मिथ्याभावसे व्याप्य-व्यापक होकर कार्य होता है। अमूर्तिक चेतनरूप जीवके जो यह सम्यक्त्वमोह कार्य स्वांग भेद बना है।

(३०) सम्यक्त्वगुणका कुछ विवरण

देखो मित्र! जैसे उपयोगके दो भेद हुए हैं—सामान्य वस्तु अवलोकन दर्शनगुण है, विशेष अवलोकन ज्ञानगुण है, इस प्रकार सामान्य विशेषसे उपयोगके दो भेद हुए। उसी प्रकार आचरणके दो भेद हुए—सामान्य स्ववस्तु सत्ता प्रति मतिकी आस्तिक्यता—ठीक प्रतीति यादरूप आचरण वह तो सम्यक्त्व आचरण गुण है तथा विशेषरूपसे स्ववस्तुमें स्थिरता-रूप अथवा विश्रामरूप आचरण चारित्राचरण गुण है। इस प्रकार सामान्य विशेष भेदसे आचरणके दो भेद हुए। इति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा उस पुद्गल अखाड़ेमें चारित्रमोह संज्ञक स्वांग-रूप वर्गणा उन्मत्त हुईं हैं, उसे भेद करके कहते हैं—

क्रोधः—पौद्गलिक कर्मवर्गणा अपने स्कंधको अथवा परके स्कंधोंको तप्तरूप, दुष्टरूप, उबलनेरूप अथवा खंडन, तोड़न छेदन, मर्दन, संयम घातनादिरूप होकर परिणमित होती है. वह पौद्गलिक क्रोध, चारित्र, मोहका स्वांग बना है। तथा इस जीवके चारित्राचरण गुणका निजभाव तो उपयोग चेतनवस्तुरूप विश्राम स्थिर रहना है; उपयोगों द्वारा परज्ञेय देखते जानते हैं, उस ज्ञेयमें स्थिरतारूप रंजना चारित्राचरणगुणका ऊपरी भाव है—विपरीतभाव है अथवा मोह विकल भाव है। मोहरूप चारित्रगुणका ऐसा अमूर्तिक चेतन स्वांग बना है, अब उसके भेद कहते हैं—

परज्ञेयको उपयोगोंके द्वारा देखता जानता हुआ उस भिन्न ज्ञेयके प्रति द्वेषरूप, संताप उद्वेगरूप, क्लेश तप्त क्षोभ-रूप अथवा हतन (नष्ट करना), हिंसन, तोड़ना, खण्डन करना, छेदन, भेदन, मर्दन आदिरूप रंजित होना वह अमूर्तिक चारित्रगुणके मोहभावका चेतन क्रोधके भेद स्वांग है।

मानः—तथा उस पौद्गलिक चारित्रमोह कर्मवर्गणा परिणमनेके कारण मन, वचन, काय स्कंध दुष्ट क्रूर, स्तब्ध. उन्नत, अकड़ आदिरूप होते हैं, वह पौद्गलिक मान-मोह-भेद उत्पन्न होता है। तब इस जीवके एकक्षत्रावगाही पौद्गलिक मन-वचन-कायादिके शुभ प्रवृत्ति ज्ञेयको; निकट-वर्ती माता, पिता, पुत्र, पुत्री, स्त्री, स्वजन, सम्बन्धी, मित्रादि ज्ञेयको; उच्चकुल, जाति, धन, विद्या. कला, रूप,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बल, परिग्रह, लाभ, अधिकारी, देशादि संयोग रीति ज्ञेयोंको; और अत्यन्त निकटवर्ती शुभ पुद्गल रीति ज्ञेयोंको उपयोग द्वारा देख–देखकर जान जानकर उन ज्ञेयोंसे अपनेको भला, अपनेको बड़ा, अपनेको पवित्र, अन्य लोगोंसे अपनेको उच्च, अपनी स्तुति (प्रशंसा) इत्यादिरूप हो रंजित होना वह अमूर्तिक चेतन चारित्राचरण मोहका मान भेद प्रवर्तता है।

मायाः—तथा उस पौद्गलिक कर्म अखाड़ेमें पौद्गलिक वचन, काय, योग, वर्गणा शुभरूप खिरे है, पौद्गलिक वचन काय, वर्गणा, दुष्ट, क्रूर, तप्तरूप खिरे है, पौद्गलिक मन-वर्गणा दुष्टरूप खिरे है, अथवा पौद्गलिक मनवर्गणा शुभ सौम्यरूप खिरे है। यह भाव पौद्गलिक मोहका इस प्रकारका मायारूप स्वांग उत्पन्न होता है।

तब (जीवके) सर्व जीव-अजीव स्कंधादि ज्ञेयोंको भिन्न अस्पृष्ट रूपसे उपयोगों द्वारा देखते जानते हुए इस जीवके उन ज्ञेयस्कंध प्रति कितनी ही लोभ, रति आदि रागरूप रंजित बहुत-सी शक्ति और कितनी ही क्रोध, मान अरति, भय, शोक आदि द्वेष तृष्णा रंजितरूप अल्प-शक्ति अथवा द्वेष रंजितरूप प्रचुरशक्ति रागतृष्णा रंजित-रूप अल्पशक्तिसे उस अस्पर्श ज्ञेय समूह प्रति दुविधारूप रंजित होना वह जीवका अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका मायारूप दुविधा स्वांगभेद बनता है।

लोभः—तथा पौद्गलिक कर्म मन, वचन, काय, वर्गणा, स्कंध अन्य स्कंधका कारण प्राप्त होनेपर उस स्कंधके आकर्षणरूप परिणमित होती है अथवा उस स्कंधसे संबंध-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप परिणमित होती है, वह पौद्गलिक मोहका लोभ स्वांग उत्पन्न होता है। जैसे लोहे और चुम्बकका आकर्षणरूप न्याय।

तब कुटुम्ब परिकर आदि सर्व परिग्रह और यश:कीर्ति आदि सर्व ज्ञेय समूह उन ज्ञेयोंको अस्पर्शरूपसे उपयोगों द्वारा देखते जानते हुए उन ज्ञेय समूह प्रति अत्यागरूप (न छोड़ने रूप) राग तृष्णा अथवा उन ज्ञेयों प्रति तृष्णा-लालच-अभिलाषा-व्यसव-चाह इच्छादिरूप राग रंजितभाव, वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका लोभस्वांग भेद प्रवर्तता है।

हास्यः—तथा पौद्गलिक मन-वचन-कायादि वर्गणाओंके विकसित होनेरूप खिलनेरूप जैसे प्रत्यक्ष आंख, होंठ दांत आदि अनेक प्रकार खिलनेरूप जोरसे हंसनेरूप होते हैं। वह पौद्गलिक योगोंके खिलनेरूप मोहकर्मका हास्य स्वांग उत्पन्न होता है। तथा बुरेरूप अथवा भलेरूप पौद्गलिक स्कंध ज्ञेय अथवा पौद्गलिक योगोंकी बुरी–भली चेष्टारूप ज्ञेयको उपयोग द्वारा देखते जानते जीवका आनन्दप्रसादरूप-प्रसन्नरूप विकस्वररूप आदि रंजित होना (रंजना) वह चेतन अमूर्तिक चारित्रमोहका 'हंसना' स्वांग है।

रतिः—(उस पौद्गलिक आखड़ेमें) पौद्गलिक मन, वचन, काय, योग, वर्गणा, स्कंधके जिस अन्य पौद्गलिक स्कंधसे संबंध करनेको तथा शीघ्रसंबंध करनेको प्रवृत्त होनेसे पौद्गलिक मोहका रतिस्वांग उत्पन्न होता है। तब इस जीवके उपयोग द्वारा जिस ज्ञेयको देखते जानते हुए उसका स्पर्श करके ज्ञेय प्रति रुचिरूप, रागरूप, हितरूप, स्नेहरूप,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नेहरूप आदि रंजित होना, वह अमूर्तिक चेतन चारित्र मोहका रति स्वांग भेद जानना।

अरतिः—उस पौद्गलिक अखाड़ेमें पौद्गलिक योग वर्गणा स्कंधका अन्य पौद्गलिक स्कंधसे संबंधरूप नहीं प्रवर्तना अथवा बिपरीत उसी स्कंध कारणसे घाते छेदे जाना पौद्गलिक मोहका अरति स्वांग है। इस जीवके उपयोगों द्वारा देखते जानते अस्पर्श जीव निर्जीव स्कंध ज्ञेयसे अरुचि-रूप, अप्रतीतरूप, द्वेषरूप आदि रंजित होना वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका अरति स्वांग होता है।

शोकः—पौद्गलिक योग वर्गणा अन्य स्कंध नाशसे मुरझायेरूप–कुम्हलायेरूप विलखनेरूप तथा कायके अश्रुपात आदिरूप, भ्रकुटीको ऊँची करना आदिरूप पौद्गलिक मोहका शोकस्वांग उत्पन्न होता है। जीव–अजीव समूहके नाशभावरूप ज्ञेयको यह जीव उपयोगों द्वारा देखता जानता है। तब उस अस्पर्श स्कंध वियोगभावरूप ज्ञेयोंसे क्लेशरूप, द्वेषरूप, दुःखरूप, संकल्प-विकल्परूप, संतापरूप आदि जो रंजना (रंजितपना) वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका शोक स्वांग है।

भयः—अब उस पौद्गलिक अखाड़ेमें पौद्गलिक मन, वचन, काय, वर्गणा स्कंध अन्य जीव निर्जीव स्कंधका संबंध कारण प्राप्त कर संकोचनरूप होते हैं रूईकी पूनीरूप अथवा कंपनरूप होते हैं अथवा अन्य क्षेत्रमें चले जाते हैं वह भाव पौद्गलिक मोहका भय नामक भेद है, तथा इस ज्ञेयको उपयोगों द्वारा देखते जानते उस अस्पर्श ज्ञेयसे भयरूप,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंकारूप, पुद्गल अनिष्टरूप आदि रंजितपना वह जीवके अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका भय स्वांग उत्पन्न होता है।

जुगुप्सा:—वह पौद्गलिक मन, वचन, काय, वर्गणा स्कंध अन्य स्कंध संबंधका निमित्त प्राप्त होने पर उसे स्पर्श नहीं करे और नासिका आदि संकोचरूपसे होकर वह पौद्गलिक मोहका जुगुप्सा स्वांग उत्पन्न होता है। इस जीवके जिस ज्ञेयको उपयोगों द्वारा देखते जानते ग्लानिरूप, अनिष्टरूप, बुरेरूप आदि रंजना वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका जुगुप्सा स्वांग प्रवर्तता है।

पुरुषवेद:—तथा वह पौद्गलिक मन, वचन, काय, वर्गणा स्कंध उग्र, उन्मत्त, अङ्गार (गर्म) होता है। प्रमाद, तोड़नें, मोड़नें, लिपटनें और आलस्यके आकार होता हैं तथा शुक्रादि धातुके विकाररूप होता अथवा अन्य स्कंधसे रमण, आलिंगनरूप होता है. वह पौद्गलिक मोहका पुरुषवेद स्वांग है। तब इस जीवके जो पुद्गल स्कंध ज्ञेयको उपयोगों द्वारा देखते जानते हुए उग्र उन्मादरूप उच्चाटन, अरतिरूप, आतापन, मोहन, वशीकरण, निर्लज्ज रूप और उस अस्पर्श ज्ञेय प्रति पुनः पुनः देखना जानना, स्मरण करना, भोगना, सेवन करना, स्मरण करना आदि तृष्णारूप रंजना (रंजित होना) वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका पुरुषवेद स्वांग होता है।

स्त्रीवेद:—तथा उस पौद्गलिक अखाड़ेमें पौद्गलिक योग, वर्गणा, स्कंध मंदरूप उन्मादाकार होकर अंग तोड़ने, मोड़ने, लिपटनेके आकार, प्रमाद, आलस्य, अंगके आकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा रजादि धातु विकार होते हैं। पुनः अन्य स्कंधोंको रमणकरानेका कारण होता है वह पौद्गलिक स्त्रीवेद स्वांग है। इस जीवके पुद्गल स्कंध ज्ञेयको उपयोग द्वारा देखते जानते हुए मंद मंद उन्मादरूप, उच्चाटन, अरति, तापन, मोहन, वशीकरण, लज्जा, मायारूप अथवा उस अस्पर्श ज्ञेय प्रति पुनः दिखाने, बतलाने, सेवन, रमण कराने आदि तृष्णारूप रंजना वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका स्त्रीवेद नामक भेद है।

नपुंसकवेदः—तथा पौद्गलिक अखाड़ेमें पौद्गलिक पुरुषस्त्रीवेद मिश्रभावसे पौद्गलिक योगोंका परिणमित होना पौद्गलिक मोहका नपुंसकवेद स्वांग है। तब इस जीवके अमूर्तिक चेतन पुरुष स्त्रीवेद मिश्रभावसे चारित्रगुणका रंजना वह अमूर्तिक चेतन चारित्रमोहका नपुंसक वेद स्वांग है।

देखो भव्य! चेतन चारित्राचरण गुण परभावरूप अथवा मोहरूप हुआ इस प्रकार नाट्य करता है, वह (चेतन) उस पौद्गलिक मोहकर्म नाटकसे भिन्न ही है। वह उस पुद्गलको त्रिकालमें भी स्पर्श नहीं करता। सम्यग्ज्ञानी उससे कुछ भी संबंध नहीं देखता है।

तथा उस पुद्गल अखाड़ेमें आयु नामककर्मका नाटक होता है। वह किस प्रकार है? वही कहते हैं—

जो पौद्गलिक स्कंध जीव प्रदेशसे अस्पर्श्य शरीर आदि पौद्गलिक वर्गणाओंका एक संबंधको स्थिति प्रमाण तक रखता है वह पौद्गलिक आयुकर्म स्वांग उत्पन्न हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। तब इस जीवका चरम देहसे किंचित् न्यून मूल अवगाहना गुण परभावरूप हुआ है तथा अन्य ही अन्य परिमाणसे व्याप-व्यापक हो रहा है, मूल परिणाममें च्युत हो रहा है, वह जीवका अमूर्तिक आयु स्वांगभेद है।

तथा उस पौद्गलिक अखाड़ेमें नामकर्म है वह किस प्रकार है ? उस नामकर्मकी कितनी ही प्रकृतियाँ तो मिलकर शरीरके स्कंध प्रमाण मूर्तिरूप होती हैं तथा उस नामकर्मकी कितनी ही प्रकृतियों द्वारा उस शरीर स्कंधमें प्रकृतियाँ मंडना रूप रचना होती हैं तथा उसकी अन्य कितनी ही उस शरीर स्कंधमें शक्तिरूप (संहननरूप) होतो हैं और उसकी कितनी ही प्रकृतियाँ उस छोटे–बड़े शरीर स्कंध प्रमाण (संस्थान) रूप होती हैं, तथा कितनी ही प्रकृतियां उस शरीरको सूक्ष्म, स्थूल, स्थावर, त्रस, श्वासोच्छ्वास, शब्दादिरूप बनाती हैं, इस प्रकार पौद्गलिक नामकर्म अखाड़ा नृत्य करता है।

तब अमूर्तिकगुणके कारण इस जीवके जो असंख्यात प्रदेश अमूर्तिक हैं, उन प्रदेशोंकी निजस्वाभाविक चरम देह परिणामसे किंचित् न्यून मनुष्याकार परिमितिको अवगाहना सूक्ष्म कहते हैं। तथा जब अमूर्तिक प्रदेश विकाररूप प्रवर्तते हैं तब जैसा पौद्गलिक देह आकार और देह परिमित बनती है उसीके अनुसार जीवके भी असंख्यात प्रदेश वैसे ही आकार वैसे ही प्रमाणरूप हो परिणमते हैं। अमूर्तिक जीव प्रदेश इस प्रकार विकाररूप होते हैं। इस रूप एक जीवके ही प्रदेश व्याप्यव्यापक होते हैं। जीवको यह जीव प्रदेश विकाररूप नामकर्म स्वांग उत्पन्न होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा उस पुद्गल अखाड़ेमें पौद्गलिक देह स्कंधको उच्चकी पदवी द्वारा दिखाता है अथवा नीचकी पदवी द्वारा दिखाता है, वह पौद्गलिक भाव गोत्रकर्म स्वांग है, अब इस जीवके अगुरुलघुगुण है। अगुरुलघुगुण किसे कहते हैं? अगुरुलघु अर्थात् जो द्रव्यके अनंतगुण अपने अपने स्वभावरूप परिणमित हो, अपने अपने निज जातिरूप निश्चल रहें, उस स्वभाव शक्तिको अगुरुलघुगुण कहते हैं। ऐसा जीवके अगुरुलघुगुणका निजस्वभाव है। जीव द्रव्यका सर्वथा निज जातिस्वभावरूप कूटस्थ (निश्चल) प्रवर्तना अगुरुलघुगुणका निजजातिस्वभाव है। तथा वही अगुरुलघुगुण विपरीतरूप होता है। विपरीतपना क्या?

द्रव्यके गुण प्रदेश जैसेके तैसे स्वभावरूप नहीं रहना, सर्वथा अन्यसे अन्य हो जाना, पुनः वही होना (प्रतिजीवी) अगुरुलघुगुणका विपरीत प्रवर्तन है। जीवके अगुरुलघुगुणके परभावरूप गोत्र स्वांग है। अथवा इस प्रकार भी (व्याख्यान है)। जीव पापरूप परिणमित हो तो नीचरूप होता है और पुण्यरूप परिणमित हो तो उच्चरूप होता है। इन पुण्य-पाप दोनोंसे अतीत जीवका निज जातिरूप परिणमन है उसका जैसाका तैसा नहीं रहना। इस प्रकार अगुरुलघुके विपरीतभावसे जीवका अमूर्तिक गोत्र स्वांग होता है।

तथा उस पुद्गल अखाड़ेमें जो पौद्गलिक मन, वचन, काय आदि हैं; उनका भी खिरना–व्यापार–बल प्रवर्तन संपूर्ण नहीं होता, अपूर्ण खंडित होता है, विघ्न होता है उस विघ्नभावरूप पौद्गलिक अंतरायकर्म स्वांग है। तब इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवके यद्यपि जीवद्रव्यमें गुणोंका निजजाति सकल स्वभाव शक्तिरूप अव्यक्त हो रहा है परन्तु उस गुण सकल स्वभावको जीवद्रव्य अपने परिणामरूप व्यक्तता प्रवाहमें[१] देनेको समर्थ नहीं हो सकता; तथा यह जीवद्रव्य षट गुणी-हानि वृद्धिसे एक समय भी स्थायी शुद्ध स्वरूपरूप पर्याय परिणामों द्वारा निज स्वभाव सुख[२] भोगनेको समर्थ नहीं हो सकता, तथा यह जीवद्रव्य निजजाति स्वभावके एक अद्वितीय स्वादको बारंबार सर्व उत्पाद परिणामोंकी परम्परा द्वारा[३] उपभोग नहीं कर सकता; तथा इस जीवद्रव्यके स्वाद-भाव भावशक्तिरूप अव्यक्त हो रहे हैं, जीवद्रव्यके परिणाम उस स्वभावका[४] लाभ प्राप्त नहीं कर सकते, तथा इस जीवद्रव्यका सकल निज जातिरूप स्वभाव सर्वथा प्रकार स्फुरणका प्रगट होनेका उस भावरूप रहनेका बल—[५]वीर्यगुण नहीं हो सकता, इस प्रकार जीवका उद्यम—बल—वीर्यगुण निर्बल (होकर) विपरीतभावरूप परिणमित हुआ है, उस रूप अमूर्तिक चेतन अंतराय स्वांग उत्पन्न होता है।

हे भव्य! तू देख! ज्ञानी इस प्रकारसे आठ भांतिका अमूर्तिक चेतन नाटक होता हुआ देखता जानता है। उस पौद्गलिक नाटकसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं देखता। क्यों? जो कुछ सम्बन्ध हो तो ज्ञानी देखें। परन्तु जो कुछ सम्बन्ध नहीं हो तो ज्ञानी कैसे देखे? (अर्थात् नहीं देखता है)।

तथा उस पौद्गलिक नाटक कर्म प्रकृतिके आने जानेके (सद्भाव-अभावके) भेदसे चौदह अखाड़े-स्थानक मुख्य बनते

१—दान गुण २—लाभगुण ३—भोग गुण ४—उपभोग गुण ५—वीर्य गुण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं; तब इस जीवके इस विपरीत अशुद्ध परभावके उसी प्रकार घटने-बढ़नेसे चौदह भेद मुख्यरूपसे होते हैं। ज्ञानी चेतन अमूर्तिक जीवके ऐसे चौदह भेद भिन्न-भिन्न देखता है पुद्गलसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं देखता। इस प्रकार जीवका अशुद्ध परभाव नाटक होता हुआ भिन्न ही देखता है क्योंकि जब जीवद्रव्य अशुद्धरूप प्रवृत्त हुआ तब उस अशुद्ध भावसे स्वयं ही व्याप्य-व्यापक हो रहा है। तीन कालमें अन्य द्रव्यको स्पर्श भी नहीं करता। यह द्रव्योंकी अनादि अनंत मर्यादा बंधी है। अथवा द्रव्य शुद्धरूप परिणमन करो या अशुद्धरूप परिणमन करो परन्तु अन्य द्रव्यको किसी भी प्रकार स्पर्श नहीं करता। ज्ञानी ज्ञान होनेपर इसी भाँति देखता जानता है—यह (मर्यादा) इसी प्रकार है।

हे मित्र! तू भी ऐसी दृष्टिसे देखा कर। अन्य लोग, स्वांग, स्कंध, परज्ञेय द्रव्यका दोष न देख, न जान। परज्ञेयकी सन्निधि निमित्त मात्र देखकर "मेरा द्रव्य इन्होंने मलिन किया" इस प्रकार यह जीव स्वयं झूठा ही भ्रम करता है। परन्तु उन परज्ञेयोंसे तू कभी स्पर्शित भी नहीं हुआ। तथा तू उनका दोष देखता जानता है यह तेरी हराम जादगी है। इस कारणसे एक तू ही झूठा है, उसका कुछ दोष नहीं। वह सदा सच्चा है।

इस कारण हे मित्र! अमूर्तिक संसार नाटक रूप तू ही नाचता है, वही तू स्वयंको देख जान। तथा इस अशुद्ध अवस्थामें स्वयंको देखते ही जानते ही तुझको अपनी निज जातिके नमूनेका देखना, जानना, तिष्ठना, आस्वादन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा। तथा तब ही उन निर्मल परिणामोंसे परिणमित होनेपर तेरे अशुद्ध परभाव हेय-नष्ट होते हैं। वह स्वभाव नमूना देखने जानने मय ही है। इस देखने जानने द्वारा अपना ज्ञान दर्शन देखा जाना। तथा उस देखने जाननेमें जीवको विश्राम आराम हुआ, स्वाद भोगा। जो कितनेक जीव परिणामोंको, निज स्वभावरूपका लक्ष्य करता है, वही जीवके स्वरूप स्वभावका नमूना है।

हे मित्र! सर्वका तात्पर्य यह है जहाँ—अपना अशुद्ध द्रव्य देखा और अशुद्धतासे भिन्न स्वयंको देखा, वहां निज स्वभावके स्वादका उद्योत अवश्य होता है। ऐसा होने पर तू ही जावेगा और अशुद्धताके नष्ट करनेको तूं ही उद्यम करेगा। तू इस प्रकार सदा देखा कर। 'अमूर्तिक चेतन-भावसंसारसे एक जीव व्याप्यव्यापक है' यह अधिकार समाप्त हुआ।

---

(३१) संसार कर्तृत्व अधिकार वर्णन

कोई इस प्रकार प्रश्न करता है कि गुणस्थान, मार्गणा, कर्मयोग आदि संसार है। वह संसार किसके परिणाममय है? वह कहिए। वही कथन दिखाते हैं?

देखो एक चन्द्रमा आकाशमें है, एक उसका निमित्त प्राप्त होनेपर पानीकी स्वच्छताके विकाररूप चन्द्रमा है। तथा एक लाल रंग है और एक उसका निमित्त प्राप्त होने पर स्फटिककी स्वच्छताके विकाररूप लाली है। तथा एक मयुर स्कंध है और एक उसका निमित्त प्राप्त होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर दर्पणकी स्वच्छताके विकाररूप मयुर है। उसी प्रकार एक गुणस्थान मार्गणादि संसार पुद्गल स्कंध है तथा एक उसका निमित्त प्राप्त होवे पर जीवकी स्वच्छताके विकार-रूप चेतना संसार है। तो यहां तुम न्याय द्वारा विचार करो कि चन्द्रमा, लाल रंग, मोर, संसार किस परिणाम-मय वस्तुरूप उत्पन्न हुआ है? किन परिणामोंमें भावरूप उत्पन्न होता है? देखो, जो वे चन्द्रमा आदि विकारी हों तो उनके भी अन्य चन्द्रमा आदिका निमित्त हो, वह तो दिखाई नहीं देता। और यदि वे चन्द्रमा आदि विकारभाव हों तो उनका कोई विकारी स्वच्छ स्थान भी दिखाई नहीं देता। और यदि वे चन्द्रमादि विकार हों, तो अन्य जलादिका विकार चन्द्रमादि विकाररूप होना मूलसे नास्ति हो जाय परन्तु ये जलादि विकार तो प्रत्यक्ष होते दिखाई देते हैं।

तथा जो इस प्रकार कहें, 'वे चन्द्रमा आदि जलादिमें प्रवेश करके तिष्ठ रहे हैं'? परन्तु वे तो इन जलादिमें परमाणुमात्र भी प्रवेशकर व्याप्त होते नहीं दिखाई देते हैं। तथा जो इस प्रकार कहते हैं—जलादिमें चंद्रमादि विकाररूप उन चन्द्रमा आदि निमित्तके बिना ही होते है? तो इस चन्द्रमादि विकारकी स्थिति उन चंद्रमादि निमित्त स्थितिके आधीन मात्र देखते हैं। अतः यहाँ यह भी देखते हैं कि जो वे चन्द्रमादि कभी नष्ट होते हैं (छुपते हैं), तो उनके नष्ट हो जाने पर यहां भी कुछ वस्तु रह जाती नहीं दिखाई देती। उनका नाश (छिपना) वह वस्तु (प्रतिबिंब) हीका नाश है। इससे तो यह निर्णय हुआ कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे चन्द्रमादि वस्तु अंश परिणाममय हैं वह वस्तु ही है। तथा जलादि विकाररूप चन्द्रमादि नाश होते जलादि स्वच्छता परिणाम प्रत्यक्ष रह जाता है। अतः यह प्रत्यक्ष है कि जलादिकी स्वच्छता वस्तु है परन्तु उस चन्द्रमादिरूपके अनुसार जलादि स्वच्छता परिणामने भी स्वयंको चन्द्रमादि स्वांग बना लिया है। उन स्वच्छता परिणामोंने भी उन चन्द्रमादि वस्तुमयके रूपोंकी कूट (-आकार) बनाया है। परन्तु यह कूटकी कर्त्ता तो यह स्वच्छता वस्तु अंश परिणाममय है। तथा स्वच्छता परिणामों द्वारा रचित चन्द्रमादिरूप कूट है सो कूट स्वांगभाव हैं परन्तु वह कूट (स्वच्छता) परिणाम नहीं है; वह कूट तो परिणामोंका स्वांग है। निर्णय करनेसे निश्चय हुआ कि जलादिके स्वच्छता परिणामोंमें ही जो चन्द्रमादि स्वरूप बना है वह रूप अवस्तु है, अपरिणाम है। हे भव्य! निर्णय कर तो जैसीकी तैसी बात निश्चित होगी। वह तुमने देखी। अब उससे निःसंदेह जानना—

गुणस्थान, मार्गणा, कर्म, योग, बंध कषाय, बंध आस्रव, संयम, असंयम आदि जितना भी संसार वस्तु अंश परिणाममय है, वह सर्व केवल पौद्गलिक द्रव्यमय जानना। तथा भावसंसार होनेकी ऐसी विधि है, उसे तू सुन—

इस जीवके उपयोगरूपमय स्वच्छता परिणाम है उस परिणामोंमें देखने जाननेंके स्वभावके कारण सर्व परज्ञेय दृश्यके आकार होते हैं। ऐसा वस्तुस्वभाव है, उपयोगकी सदा ऐसी रीति है। अतः इस एक जीवमें निश्चयसे पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी है, स्व भी है। पर दृश्य ज्ञेयरूप ज्ञान–दर्शनके आकारसे केवल एक आकार, आकार तो पर है तथा देखनें जाननेरूप जितना स्व है।

देखो ! स्व-पर निश्चयसे इस जीवमें है, प्रगटरूपसे भी इस जीवमें ठीकरूप–स्थिररूप आचरण गुण है। वह आचरणगुण किसी ज्ञेय संसार पुद्गल स्कंधोंके निमित्त-कालसे मात्र एक (जो) उन आकाररूपोंमें प्रवर्तता है तथा कभी केवलज्ञान दर्शनरूपमें प्रवर्तता है। जब आचरण गुण उस एक केवल परज्ञेय आकारमें प्रवर्तता है उस कालमें तो जीवद्रव्य अज्ञान दुखादि अशुद्ध होता है और जब आचरण गुण आकारोंको छोड़कर केवल एक ज्ञानदर्शनरूप प्रवर्तता है तब केवल ज्ञानादि सुख शुद्धतासे जीवद्रव्य शुद्ध होता है। यह आचरणकी रीति है।

अतः हे भव्य ! तू इधर देख। यह आचरण गुण जब मात्र उन आकारोंमें प्रवृत्त हुआ, वही जीवको पर स्वांग रचना उत्पन्न हुई, पर विकार उत्पन्न हुआ। इस प्रकार जीव परिणाम स्वयंको परभाव स्वांग बना लेता है। वह सर्व भाव संसार है। वह भावसंसार केवल जीवका जानना। अन्य परिणाममय संसारसे एक पुद्गल व्याप्यव्यापक और भावसंसारसे एक जीव व्याप्यव्यापक हो रहा है।

तथा एक बात जानना पुद्गल परिणाममय रूपों द्वारा संसारका कर्त्तादि होता है तथा जीव परिणाम रूपों द्वारा संसारका कर्त्ता नहीं होता है। यह जीव व्याप्यव्यापक-पनेसे मात्र भावसंसारका कर्तादि जानना। पुद्गल द्रव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने परिणामोंरूप संसारका कर्त्ता होता है। परिणाम पिंड द्वारा संसारका कर्त्ता है। यह जीवद्रव्य अपने परिणामोंके भावोंरूप संसारका कर्त्ता होता है तथा जीव परिणामोंकी अपेक्षासे सदा त्रिकाल शुद्ध एक चेतनमय परिणाम उत्पन्न करनेका कर्ता रहता है। तथा जीवद्रव्यके द्वारा उत्पन्न जो मात्र चेतनमय परिणाम हैं, उन परिणामोंने भी स्वयंको संसारभाव अशुद्धभावरूप रचना की है अतः जीवके परिणाम संसारभाव अशुद्धभावके कर्त्ता होते हैं यह निःसंदेह है कि—जीवद्रव्य निश्चयनयसे कभी भी कर्त्ता नहीं होता है। जीवके परिणाम उस संसारके कर्त्ता हुए हैं और वे परिणाम इसी जीवद्रव्यके हैं, इसलिये व्यवहारनयसे जीवद्रव्यको भो कर्ता कहते हैं।

तथा जीव परिणाम उस अशुद्ध संसारभावसे व्याप्य-व्यापक हुए हैं, अतः उन परिणामोंको निश्चयसे अशुद्धभावके कर्त्ता कहते हैं। तथा अशुद्धनिश्चयसे द्रव्यको संसारका कर्त्ता कहे तो भी कोई दूषण नहीं है। परन्तु ज्ञानदृष्टिमें जीवद्रव्य संसारका सदा अकर्त्ता दिखलाई देता है।

यहां एक दृष्टांत जानना—जैसे माणेक स्वयं लाल परिणाममय उत्पन्न हुई अतः वह मणि लाल परिणाममयका कर्त्ता है। उसी प्रकार पुद्गलद्रव्य पुद्गल परिणाममय संसारका कर्त्ता है तथा उस माणेकका निमित्त प्राप्त कर स्फटिक शिलामें विकारकी लालिमा उत्पन्न हुई; उस शिलामें उस लालिमा-भावका कर्त्ता प्रत्यक्ष, उस शिलाका स्वच्छ परिणाम है, वह स्फटिक द्रव्य नहीं है। वह स्फटिक द्रव्य तो लालिमाके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणामका अकर्त्ता है। तथा जो द्रव्य उस लालिमाको परिणामों द्वारा करे तो वह लालिमा उस स्फटिककी स्वच्छताके समान हो जाय अर्थात् वह लालिमा उस स्फटिकका गुण हो जाय। जब गुण हो जाय तब नष्ट नहीं होगा, (उसको अर्थात् लालीको गुणरूप माना जाय तो वह) विकाररूप नहीं ठहरेगा, ऐसा अनर्थ उत्पन्न होगा। अतः यह प्रत्यक्ष है —स्फटिक द्रव्य लालिमाका कर्त्ता नहीं है, उसका स्वच्छता परिणाम निश्चयसे कर्ता है। परन्तु व्यवहारसे स्फटिक लालिमाका कर्त्ता कहा जाता है क्योंकि वह स्वच्छता उसकी है। इसी प्रकार जीवको जानना। अन्तर यही है कि स्वच्छता परिणामोंके स्थान पर चेतनपरिणाम और स्फटिक द्रव्यके स्थान पर जीवद्रव्य लगाना। इस प्रकार यह जीव परिणामों द्वारा भावसंसारका कर्त्ता होता है अतः इसको भावसंसार जानना।

मित्र! यहां एक बात और जानना। जीवके परिणामोंकी जिस जिस काल जैसी जैसी अवस्था होती है वही एक अवस्था जीवद्रव्यके होती है। परिणाम-अवस्था विना इस द्रव्यके अवस्था होनेका कोई मार्ग नहीं है। अतः अन्य अवस्था परिणाम बिना किस प्रकार हो? जिस काल परिणाम बाह्य अंतर, शुद्ध, अशुद्ध अथवा मिश्र उन परिणामोंमेंसे कोई अवस्था धारण करे, उस काल द्रव्यको ही एक अवस्था निःसंदेह होती है। उस काल द्रव्यको उसी दशाका स्वाद है। इति संसार कर्तृत्वाधिकारः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३२) अनुभव वर्णन

इस पौद्गलिक कर्म द्वारा पांच इन्द्रिय छट्ठे मनरूप बने हुए संज्ञी देह, उस देहमें उसके प्रमाण जीवद्रव्य स्थित है उस जीवद्रव्यको भी इन्द्रियमन नामसे कहा जाता है। उसका नाम भावइन्द्रिय–भावमन है और वहां उपयोग परिणाममें भी छह प्रकार भेद हो रहा है। एक उपयोग परिणाम भेद पुद्गलके स्पर्शगुणको देखता जानता है, एक उपयोग परिणाम भेद पुद्गलके रसगुणको देखता जानता है, एक उपयोग परिणाम भेद पुद्गलके गंधगुणको देखता जानता है, एक उपयोग परिणाम भेद पुद्गलके वर्णगुणको देखता जानता है, एक उपयोग परिणामभेद पौद्गलिक शब्दस्कंधको देखता है जानता है और एक उपयोग परिणामभेद अतीत, अनागत, वर्तमान, मूर्तिक, अमूर्तिककी चिंता, विचार, स्मरणादि विकल्परूप देखता जानता है; इस प्रकार उपयोग परिणामभेद हो रहा है। तथा उपयोग परिणामके भेद जो पुद्गलके स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ज्ञेयोंमें एक एकके बाद दूसरे दूसरेको देखने जाननेको एक एक उपयोग परिणाम भेद है। इस प्रकार राजा इन्द्र (राजा इन्द्रवत् आत्माके) उपयोगके भेद हो रहे हैं अतः उन उपयोग परिणाम भेदोंको इस भावसे इंद्रिय संज्ञा द्वारा कहा जाता है तथा उपयोग परिणामके विकल्प, विचार, चिंता-रूप मनन होता है, और उसके होनेसे उस उपयोग परिणाम भेदको मन संज्ञा द्वारा कहा जाता है।

अब इनको एक ज्ञानका नाम लेकर कथन करता हूं 'ज्ञान' कहनेसे दर्शनादि सर्व गुण समाविष्ट हो गये, अतः ज्ञानका कथन करता हूं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखो संत ! इन मन इन्द्रियके भेदोंके ज्ञानकी पर्यायका नाम मतिसंज्ञा है, और भी उस मन भेदज्ञान द्वारा अर्थसे अर्थान्तर विशेष जाने इस जाननेकी श्रुति संज्ञा है। ज्ञानकी मति और श्रुति दोनों पर्यायें विपरीतरूप और सम्यक्रूप होती हैं। उसीका विवरण कहता हूं—

तू यहाँ देख ! यह जीव जब तक मिथ्यात्वी रहता है तब तक यह मति, श्रुति, कुरूप होते हैं अर्थात् कुमति, कुश्रुति कहलाते हैं। तथा जब यह जीव सम्यक्त्वी होता है तब यह मति, श्रुति, सम्यक्मति, सम्यक् श्रुतिरूप होते हैं। वह कुरूपता किस प्रकार प्रवर्तती है और सम्यक्रूपता किस प्रकार प्रवर्तती है ? उसका विवरण तू सुन—

हे संत ! कुरूपता–बुरी, सम्यक्ता–भली, क्रमशः मिथ्यात्वी जीवके और सम्यक्त्वी जीवके है। मति, श्रुत पर्याय तो दोनोंके एक समान है। इस कुरूपता और उस सम्यग्रूपताका क्या भेद है, वह सुन—

हे सन्त ! तू देख, मिथ्यात्वीके मति श्रुतरूप द्वारा जो कुछ जानता है, उसको जाननेमें स्व-पर व्यापक-अव्यापककी जातिका भेद नहीं है। उस ज्ञेयको अपनेरूप देखे अथवा कुछ देखता ही नहीं। यह उस मिथ्यात्वीके मति श्रुतरूप जाननेमें कुरूपता है। तथा उस सम्यग्दृष्टि मति श्रुतरूप द्वारा जो कुछ परज्ञेयको जानता है, उस जाननेमें परज्ञेयको परज्ञेयका ही भेद है तथा जाननारूप स्वका ही भेद है। तथा जो चारित्र उस परज्ञेयको अवलम्बन करता है और उस परज्ञेयका स्वाद भी भोगता है तो उस चारित्र विकारको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी देखता है, यह उस सम्यग्दृष्टिके मति श्रुतमें सम्यक्‌रूप है।

तथा यह सम्यक्त्वता सविकल्प निर्विकल्परूपसे दो प्रकार है। (१) जघन्य ज्ञानी जब उस परज्ञेयको अव्यापक पररूपत्व जानता है, आपको जाननरूप व्यापक जानता है वह सविकल्प सम्यक्त्वता है। (२) जाननरूप आप आपको ही व्याप्य-व्यापक जानता रहे, वह निर्विकल्प सम्यक्त्वता है। तथा युगपत् एक बार एक ही समयमें स्वको सर्वस्व कर सर्वथा देखता है और सर्व परज्ञेयोंको सर्वथा पररूप देखता है; तब चारित्र परम शुद्धरूप है। उस सम्यक्त्वको सर्वथा-परम सम्यक्त्वता कहा जाता है, वह केवलदर्शन ज्ञान-पर्यायमें पाया जाता है। तो इस मति श्रुति आदिकोंकी जाननदृष्टि युगपत् क्यों नहीं है, उसका क्या कारण है? उसका कारण तू सुन—

हे संत! मति श्रुत आदि ज्ञान प्रयुक्त होने रूप है। जिधर जिस ज्ञेय प्रति प्रयुक्त हों तब उस कालमें स्वज्ञेयको अथवा परज्ञेयको काकगोलक न्यायसे अथवा युगल नेत्रदृष्टि न्यायसे देखता है और उसका भी विवरण—

स्वज्ञेय अथवा परज्ञेयके प्रति प्रयुक्त होते हुए भी वे मति श्रुतज्ञानसे एक अंशका भेद जानते हैं, फिर वहांसे हटकर अन्य ज्ञेयभाव प्रति प्रयुक्त हों, तब उसको जानते हैं। उसके उदाहरण—जब जीव द्रव्यत्व जाननेको प्रयुक्त हो तब, द्रव्यत्व सामान्यको ही जानता है और जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य भेदोंको जाननेके लिये प्रयुक्त हो तब उन भेदरूपोंको जानता है तथा उन भेदोंमें भी जब एक उत्पाद भावका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानता है तब व्यय ध्रौव्यके भेद भावोंको नहीं जानता जब गुणरूपको जानता है तब द्रव्यरूपको नहीं जानता है। जब पर्यायरूपको जानता है, तब गुणरूपको नहीं जानता। जब ज्ञानका रूप जानता है, तब चेतना वस्तुत्वको नहीं जानता है। जब चेतना वस्तुत्वको जानता है, तब ज्ञान-गुणको नहीं जानता है। तथा जब ज्ञानगुणकी मति रूप पर्यायको जानता है, तब ज्ञानकी अन्य पर्यायोंको नहीं जानता है। जब स्ववस्तुको जानता है, तब पररूपको नहीं जानता है। तथा इसी प्रकार जब पुद्गल द्रव्यत्वको जानता है तब पुद्गलगुणको नहीं जानता है। जब वर्णगुणके रूपको जानता है, तब रसादि गुणोंके रूपोंको नहीं जानता है। जब रसगुणको जानता है, तब वर्णादि गुणको नहीं जानता है। तथा जब मिष्ट रसको जानता है, तब अन्य रसको नहीं जानता है। इस प्रकार सर्वका तात्पर्य यह है कि जघन्य ज्ञान जिधरको जिस ज्ञेय भाव प्रति प्रयुक्त होता है उस काल उसीको तावन्मात्र (उतना ही) एक ज्ञेयभावको जानता है। उसके दूसरे भाव प्रति जब प्रयुक्त होता है, तभी जानता है, उस ज्ञेय प्रति प्रयुक्त हुए बिना नहीं जानता।

परन्तु एक बात और है—मिथ्यात्वीके भी इसी प्रकार जघन्य ज्ञानहीका जानना है तथा इसी प्रकार जघन्य ज्ञानहीका जानना सम्यग्दृष्टिके होता है परन्तु भेद इतना है—मिथ्यात्वी जितना भी भाव जानता है, उतना ही अयथार्थरूप अजातिभेद साधता है, तथा उसी भावको सम्यग्दृष्टि जानता है, उतना ही यथार्थरूप जातिभेद साधता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, इतना ही अन्तर है। इस प्रकार जघन्य ज्ञान प्रयुक्त होनेरूप है। और कैसा है।

जघन्य ज्ञान जाननेको जब जिस ज्ञेय प्रति प्रयुक्त होता है, तब उसी ज्ञेयके प्रति क्रमसे जाननेरूप प्रवृत्त होता है। उसी ज्ञेयको पहिले थोड़ासा साधता है, फिर उसको उससे कुछ अधिक साधता है, फिर उससे अधिक साधता है, इस प्रकार उस एक ज्ञेयको कुछ कालमें संपूर्ण साध लेता है। इस प्रकार जघन्य ज्ञान क्रमवर्ती है. अथवा एक ज्ञेयको एक कालमें जानता है, फिर दूसरे कालमें दूसरे ज्ञेयको जानता है, इस प्रकार क्रमवर्ती जानना। और यह जघन्य ज्ञान कैसे है?

कतिपय (–कितने ही) है, सर्व ज्ञेयोंमेंसे कतिपय ज्ञेयोंको जान सकता है अथवा कुछ चेतन शक्तियों द्वारा जान सकता है तथा एक द्रव्यमें कुछ भावोंको जान सकता है, सर्वथा सर्व नहीं जान सकता, इससे कतिपय है। जघन्य ज्ञान भी कैसे है–जघन्य ज्ञान भी कैसे जघन्य ज्ञान है?

यह जघन्य ज्ञान साधनेको स्थूलकाल प्रवर्तता है। जब किसी एक ज्ञेयको जाननें द्वारा साधन करता है, तब जघन्य, मध्यम अथवा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तकाल पर्यंत साधन करता है; इस प्रकार ज्ञेय साधनेको स्थूलकालपर्याय है। तथा यह जघन्य ज्ञान लघुकाल स्थायी है। जो ज्ञेयभाव जानकर सिद्ध किया है, यदि फिर उस सिद्ध ज्ञेयको जानता रहे तो जघन्य, मध्यम अथवा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तकाल तक जाना करता है। फिर वहांसे छूटकर अन्य ज्ञेयभाव प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवर्तता है, इसलिये जघन्य ज्ञान लघुकाल स्थायी है। और यह जघन्य ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान शक्ति है। इस प्रकार जघन्य ज्ञानमें तो जानना होता है।

किन्तु अप्रयुक्त, युगपत्, सर्वथा, सर्व, एक समय, अनंतकाल क्षायिकरूप केवलज्ञान है। अतः इस केवलज्ञान पर्यायमें परम सर्वथा सम्यक्ता होती है। हे भव्य! इस प्रकार मति-श्रुतादि ज्ञान पर्यायोंका स्वरूप कहा और उस ज्ञानमें सम्यक्ता भी प्रवर्तता हुई कही। वह सम्यक्ता दो प्रकार है, उसे दिखाते हैं—

सम्यग्दृष्टिके इन्द्रिय, मन नामक उपयोग परिणाम-भावकी सम्यक्ता तो सविकल्परूप है और उसको तू देख—वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, ज्ञेयों प्रति एक जानन देखन-रूप उपयोग परिणाम परिणमित होते हैं, उस जानने देखनेकी एकइन्द्रिय संज्ञा है। उसे अब भिन्न-भिन्न इन्द्रियके नामसे कहते हैं—

सम्यग्दृष्टि इन्द्रिय नाम उपयोग परिणामों द्वारा जब जब जिस-जिस ज्ञेयको देखता जानता है, तब-तब वे उपयोग परिणाम यथार्थ स्ववस्तुका लक्ष लिये हुए हैं। वे उपयोग परि-णाम तथा चिंता, विचार, स्मरणरूप विषयभोग, संयोग-वियोग, स्नेह, सुख-दुःख, कषायादि अशुद्ध परिणतिके द्रव्य, गुण, पर्याय; स्वके परके भेद-अभेद आदिरूप सर्व शास्त्र, सर्व विकथाशास्त्र सर्व स्वपरकी अतीत, अनागत, वर्तमान अवस्थाओंको चिंता, विचार, स्मरण, विकल्प कल्लोलरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपयोगोंके जाननें देखनेके लिये जो परिणाम परिणमित हुए, उन परिणामोंके देखने जाननेको मन संज्ञा धारण की। अब इन्हींको मन नामसे कहते हैं। इस सम्यग्दृष्टिके मन नामक उपयोग परिणाम हैं उन परिणामों द्वारा जब-जब जो-जो चिंता, विचार, स्मरणरूप देखते हैं, जानते हैं, तब-तब वे उपयोग परिणाम यथार्थ स्ववस्तुका लक्ष लिये होते हैं। देखो, ऐसे इन्द्रिय संज्ञा परिणामों और मन संज्ञा परिणामोंमें उपयोगोंकी सम्यक्ता सविकल्परूप है। इस सम्यक्तासे भी आस्रव और बंध नहीं होते। अब निर्विकल्प दशा कहता हूं, श्रवण कर—

देखो जो चारित्राचरण है उस चारित्रके जो परिणाम वर्णादिकको आचरते हैं—अवलंबन करते हैं, उन चारित्र परिणामोंको भी इन्द्रिय आचरण संज्ञासे कहा जाता है। तथा आचरणजन्य स्वाद उस स्वादको भी इन्द्रियस्वाद संज्ञासे कहा जाता है तथा स्वभाव वस्तुमात्रसे अन्य सर्व विकल्प उन विकल्पोंको जो चारित्र परिणाम आचरण करे, अवलंबन करे उन परिणामोंको मनाचरण संज्ञासे कहा जाता है। उस आचरणजन्य स्वादको भी मन संज्ञासे कहा जाता है। इस प्रकार मन इन्द्रिय संज्ञा धारक आचरण और स्वाद परिणाम उस सम्यग्दृष्टिके मन इन्द्रिय संज्ञक सम्यक् उपयोग परिणामोंके साथ है। परन्तु उस सम्यग्दृष्टिके उन मन इन्द्रिय संज्ञा धारी अशुद्ध चारित्र परिणामोंसे आस्रव-बन्ध नहीं होता। वह किसका गुण है? (किसकी विशेषता है?)

उस सम्यग्दृष्टिके उन मन इन्द्रिय संज्ञाधारी अशुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र परिणामोंके साधनेके लिये उपयोगोंके परिणाम सम्यक् सविकल्परूप ही हैं। अतः उन मन इन्द्रिय संज्ञाधारी चारित्रके अशुद्ध परिणामोंसे आस्रव बंध नहीं हो सकता। उन उपयोग सम्यक्परिणामोंनें बंध-आस्रवरूप उन अशुद्ध चारित्रपरिणामोंकी बन्ध शक्ति कीलित कर दी है अर्थात् रोक दी है। अतः सम्यग्दृष्टि बुद्धिपूर्वक (-स्वामित्वके) आचरण अपेक्षा निरास्रव निरबन्ध हुआ है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टिके मन इन्द्रिय संज्ञाधारी सम्यक् उपयोग परिणाम तथा मन इन्द्रिय संज्ञाधारी अशुद्ध चारित्र परिणाम, इन दोनों परिणामोंका प्रवाह चल रहा है। अब इनकी निर्विकल्प दशाका होना दिखलाता हूं—

जब उस सम्यग्दृष्टि जो मन इन्द्रिय संज्ञक उपयोग परिणाम हैं, उन परिणामोंको एक बाह्य-पर वर्णादि खंड खंड देखनें जाननेसे इन्द्रिय संज्ञा धारण की हुई थी। अब वे उपयोग परिणाम उन वर्णादिकको जाननेसे रुक गये, तब उन परिणामोंको इन्द्रिय संज्ञा नहीं होती—इन्द्रिय संज्ञासे अतीत हो गये। तथा जिन उपयोग परिणामोंको विकल्प देखनें जाननेसे मन संज्ञा प्राप्त हुई थी, वे उपयोग परिणाम भी तभी उन विकल्पोंके देखने जाननेसे रुक गये, तब उन उपयोग परिणामोंको मन संज्ञा नहीं होती वे परिणाम तब मन संज्ञासे अतीत होते हैं। इस प्रकार यह दोनों (उपयोग परिणाम) इन्द्रियातीत और मनातीत हुए। तथा सर्व एक स्वयंहीको स्वयं चित् वस्तुरूप व्याप्य-व्यापकरूपसे प्रत्यक्ष आप ही देखने लगे—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाननें लगें तब वे उपयोग परिणाम प्रत्यक्ष और उस मनइन्द्रियभावसे शून्य हो गये। तथा तभी मन इन्द्रिय संज्ञाधारी उपयोग दशाके बलसे साधित मन इन्द्रिय संज्ञाधारी अशुद्ध चारित्र चपल परिणाम उसी कालमें परावलंबन और चपलता रहित हो गये। तब उन चारित्र परिणामोंको मन-इन्द्रिय संज्ञा नहीं होती, मन इन्द्रिय संज्ञा अतीत चारित्र परिणाम कहलाते हैं तथा वे चारित्र परिणाम निज उपयोगमय चित्‌वस्तुमें स्थिरीभूत शुद्ध वीतराग मग्नरूप प्रवर्तते हैं, तथा निजका स्वाद उन्हीं चारित्र परिणामोंसे उत्पन्न होता है।

इस प्रकार जब सम्यग्दृष्टिके ज्ञान, दर्शन, चारित्र सहित परिणाम निज चित् वस्तुहीको व्याप्य-व्यापकरूप देखते जानते हुए तिष्ठत (–स्थित) हुए निज व्याप्य-व्यापक स्वाद लेते हैं उस स्व स्वाद दशाका नाम स्वानुभव है। इस प्रकार स्व-अनुभव होने पर छद्मस्थ जीवके दर्शन ज्ञानादि परिणामोंको निर्विकल्प सम्यक्ता उत्पन्न होती है। वह जघन्य ज्ञानी सम्यग्दृष्टिके निर्विकल्प उपयोग सम्यक्ता जाननी। यहाँ उस काल स्वसंवेदनका यह अर्थ जानना— स्व अर्थात मैं–स्वयं ज्ञान, सं–अर्थात् साक्षात् प्रत्यक्ष, वेदन अर्थात इस वस्तुसे व्याप्य-व्यापकरूप जानना।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि होते ही उस जीवद्रव्यमें ज्ञान-गुणकी शक्ति साक्षात् प्रत्यक्ष हो कर ऐसी प्रवर्ति हुई कि इस स्थानमें यह "मैं ज्ञान इस आत्मवस्तु प्रमाण तादात्म्य व्याप्य व्यापकरूप हूं। इस ज्ञावशक्ति जाननेका नाम स्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवेदन कहा जाता है। ज्ञावकी यह स्वसंवेदनशक्ति छद्मस्थके साक्षात् प्रत्यक्षरूप हो प्रवर्तती है। वह ज्ञान-शक्तिकी प्रत्यक्षतासे केवली, श्रुतकेवली बराबर हैं, यह भेद भले प्रकार जानना—

इस प्रकार जघन्य सम्यग्दृष्टिके सम्यक्ता सविकल्प निर्विकल्पके भेदसे दो प्रकार होती है अतः जघन्य सम्यक्-दृष्टि इन दोनों सम्यक्ताओंसे निरास्रव निर्बन्ध होता है। तथा जब ज्ञान, दर्शन, चारित्र परिणामोंसे स्व-स्वादरूप स्व-अनुभव होता है तब उन परिणामोंको निम्न नाम (संज्ञा) भाव द्वारा कहते हैं—निर्विकल्पदशा, आत्मसन्मुख उपयोग, भावमतिभावश्रुति, स्वसंवेदनभाव, स्ववस्तुमग्न, स्वाचरण, स्वस्थिरता, स्वविश्राम स्वसुख, इन्द्रिय मन संज्ञा अतीत भाव, शुद्धोपयोग ये सर्व संज्ञाभाव; अथवा उपचारसे इन्द्रिय मन स्वरूपमें मग्न इस प्रकार एक ही संज्ञासे कहते हैं। स्वअनुभव आदि अनेक संज्ञाये हैं परन्तु एक स्व स्वाद-रूप अनुभवदशा अथवा निर्विकल्पदशा मुख्य जानना। अब इस निर्विकल्पदशा रहनेका काल सुन—

जघन्य, मध्यम अथवा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक स्व-अनुभवरूप परिणाम प्रवाहित हो रहे हैं। अन्तर्मुहूर्त पश्चात् फिर परिणाम, मन इन्द्रिय संज्ञक हो विकल्पी होकर, चारित्र (बुद्धिपूर्वक उपयोग अपेक्षा) परावलम्बी होता है, तब पर स्वाद आता है। इसी प्रकार वे सविकल्परूप भी हो जाते हैं। और कुछ काल पश्चात् इस सविकल्पभावसे रहित होकर पुनः परिणाम अनुभवरूप हो जाते हैं। पुनः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तर्मुहूर्त पश्चात् परिणाम सविकल्परूप भी धारण करे; पुनः कुछ काल पश्चात् परिणाम सविकल्परूप छोड़कर अनुभवरूप होते हैं। जघन्य ज्ञानीके सम्यक्त्वाचरण धारा-प्रवाही परिणाम प्रकाशित होते हैं—उत्पन्न होते हैं, चारित्रा-चरण अनुभव धाराप्रवाही नहीं होता। जघन्य ज्ञानीके अनुभव कदाचित् होता है उसका एक विवरण—

चौथे गुणस्थानके सम्यग्दृष्टिके स्व-अनुभवका काल लघु अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और बहुत काल पश्चात् होता है। तथा उससे देशव्रतीका अनुभवमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त बड़ा है और थोड़े-थोड़े काल पश्चात् होता है। तथा सर्व विरतिके स्व-अनुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्त पर्यंत रहता है अथवा ध्यानसे भी होता है और बहुत थोड़े-थोड़े काल पश्चात् बारम्बार स्व अनुभव दशा हुआ ही करती है। तथा सातवें गुणस्थानसे जो परिणाम पूर्व स्व अनुभव रूप हुए थे वे तो अनुभवरूप तिष्टे हैं, परन्तु तब मुख्य-रूपसे कर्मधारासे निकल निकलकर स्वरस स्वाद अनुभव रूप होते चले। ज्यों-ज्यों उत्तर-उत्तर कालमें आते हैं त्यों-त्यों और और परिणाम स्वाद रस अनुभवरूप बढ़ते जाते हैं। इस प्रकार तहाँसे क्षीणमोहके अन्त तक परिणाम वृद्धि द्वारा अनुभवदशाका परिवर्तन होता जाता है। हे सविकल्पके आचरण वाले! तू एक बात सुन—

तू देख, इस परिणति वर्णन द्वारा परिणामोंका सविकल्प-निर्विकल्प स्व अनुभव होना दिखलाया, तो तू भी अपनी परिणति इस कथन अनुसार है कि नहीं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलना करके देख और यदि तू सम्यग्दृष्टि है और तूने अपनी परिणति इसीके अनुसार होती देखी है तो हम एक बात और कहते हैं ? वह क्या ?

तू देख ! यह स्व अनुभवदशा स्वसमयरूप स्वसुख है, शांत विश्राम है, स्थिररूप है, कोई कल्याण है, ×चैन है, तृप्तिरूप है, समभाव है और मुख्य मोक्षमार्ग है। तथा इस सम्यक् सविकल्प दशामें यद्यपि उपयोग निर्मल रहता है. अहा ! तथापि चारित्र परिणाम परावलंब अशुद्ध चंचलरूप होते हैं अतः सविकल्पदशा दुख है, तृष्णाके तापसे चंचल है, पुण्यपापरूप कलाप है, उद्वेगता है, असंतोष-रूप है, चारित्र परिणाम ऐसे ऐसे विलापरूप हैं। ये दोनों अवस्था तूने अपनेमें देखी है। अतः भला तो यह है कि तू स्व-अनुभवरूप रहनेका उद्यम रखा कर, यह हमारा वचन विवरण द्वारा (व्यवहार) उपदेश कथन है। इति अनुभवा-धिकार।

अथ अन्यत् किंचित् कथ्यते तावत् दृष्टति—

(३३) अब जो कुछ कहा जाता है उसे ही दिखलाते हैं:—

किसी देशमें एक पुरुष छत्तीस पवन (-नीच जातियोंकी) सेवा करता था और उन जातियोंको भी राजारूप जानता था, देखता था, सेवा करता था और याद रखता था। इसी प्रकार करते करते उस पुरुषकी अवस्था बहुत समय तक व्यतीत हुई। एक दिन उस पुरुषको किसी ज्ञाता पुरुषके कहनेसे

× चैन = निराकुलता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार उत्पन्न हुआ। तब उस ज्ञाता पुरुषने यह कहा कि ये छत्तीस जातियां राजा नहीं हैं और ये राजाका नगर नहीं है। तू इनको राजाकी झूठी प्रतीति कर सेवा करता है। तू इनको झूठ ही राजा देखता जानता है, परन्तु ये राजा नहीं है। ये तो नीच जाति हैं तथा इनको राजा मानकर तुम बहुत नीच हो गये हो तथा इनकी सेवासे तू सदा दरिद्री, दुखी, भिखारी रहेगा और अनादिसे भिखारी रहा है। अतः तू आपको देख, उस राजाकी सेनासे राजा ही हो जाते हैं। धनी, अयाचक, सुखी, निडर, उच्च शोभा आदि पुरुषकी बहुत प्रभुता होती है। इन जातियोंको तू राजा मानता है, तुझे अज्ञानसे यह भ्रम है। हम भी तेरी ही भाँति भ्रममें पड़ गये थे। फिर किसी समय जब प्रत्यक्ष राजा देखा, तब हमारा यह भ्रम नष्ट हो गया। ऐसी प्रभु होनेकी बात सुनते ही उस पुरुषको राजाके देखने-जानने-सेवनकी रुचि हुई। तब उस पुरुषने उस ज्ञाता पुरुषको पूछा—

हे ज्ञाता पुरुष! वह राजा कहां है? तथा किस प्रकार पहचान करें? तथा किस प्रकार उसकी सेवा करें? तथा वह मुझे भी प्रभु कैसे करेगा? मुझको यह बात बताओ। क्योंकि तूने भी इस अवस्थाको बिताया है अतः तुम यह मूल बात-यह भेद बताओ। तब उस ज्ञात पुरुषने कहा—

मैं तो यह बातकी बात कहूंगा, परन्तु तू इसी भाँति उद्यमरूप होना। तू उद्यमरूप होगा क्योंकि तेरी तीव्र रुचि दिखाई देती है। तू वह उपाय सुन—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्र! अब तू पहले यहाँसे उद्यमवंत हो, धीरजवंत हो। पश्चात् इतनी बात मानकर इस देशको तू जान। इस देशमें पांच नगर हैं–धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल, जीव, ये पांचोंके नाम हैं। पहले उन चार नगरोंका और उन नगरोंके लोकाचारोंका तू तमाशा भले ही देखना, उनकी रीति याद रखना, परन्तु वहां बैठ न रहना, क्योंकि तुझे राजाके पास जानेका काम है, इतना ही कुछ काम नहीं। ये नगर तुझे प्रभु न कर सकेंगे। फिर वहांसे आगे तू उस जीव नगरको जाना। जब वह नगर तेरी दृष्टिमें आवेगा, तब पहले ईंट, मिट्टी, पत्थर, चूनेका बना कोट आयेगा। उसको तू भलीभांति देखकर फिर उसे छोड़कर आगे जाना। वहां आगे आठ सात आदि अन्य लोक जातियोंकी एक स्थान पर बस्ती आयेगी। उस बस्तीको भले प्रकार देखना। फिर उन जातियोंकी भिन्न-भिन्न रीतिका तमाशा देखना। फिर उसको छोड़कर आगे चलना, वहां पहले जैसी आठ सात आदि नामकी अन्य जातियोंकी बस्ती छोड़ आया था, वैसी जाति, कुल, नामरूप रीतिधारी लोगोंकी एक स्थान पर बहुत बड़ी सभा आयेगी, वहां उन लोगोंकी बहुत भीड़ है। तथा उस सभाके सर्व लोग राजाका ही परिवार है। अतः वे भी सभाके लोग सर्व राजा द्वारा राजा ही कहलाते हैं। और वहां सब राजा जैसी दीप्ति लिये हुए हैं। तू वहाँ सावधान और जागृत रहना। उन जातियोंको भले प्रकार पहचान लेना, उनके धक्के सहना, उनकी क्रूर दीप्ति देख मत डरना, उनसे निःशंक रहना, और मनमें राजा देखनेकी रुचि रखना। परन्तु उनको राजा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा कहदेनेसे तू इनके राजा होनेके भ्रममें मत पड़ना, राजा मानकर इनकी सेवामें न लग जाना, परन्तु इनको भले प्रकार पहचानना, देखना। तू फिर इनको देखता और छोड़ता, देखता और छोड़ता आगेको चले जाना। जहां सभाके ये लोग पूर्ण हुए, इन सबको तू पीछे छोड़ गया, तब इनका तो भय नष्ट हुआ। आगें जहाँ सिंहासन, छत्र, चामर, मुकुट लक्षण आवेंगे, उन लक्षणोंको तू भले प्रकार देखना जानना और याद रखना। इस प्रकार इनको जान कर फिर उन मुकुटादि लक्षणोंसे संयुक्त परम दीप्ति सुन्दर सौम्यादि मूर्ति जो पुरुष बैठा है, तू उसे ही राजा देखना, जानना। फिर तभी उसी राजाके लक्षण, सूरत और मूर्तिकी स्मृति हृदयमें रख लेना क्योंकि उस स्मृति—धारणासे अन्य पुरुषको भी देखकर उसके प्रति राजाकी शंका कभी भी उत्पन्न नहीं होगी। इस प्रकार तू जब राजा पुरुषको देखेगा तब देखते हुए तुझे अपूर्व परमानन्द आवेगा और किसी अपूर्व पुरुषको तू देखेगा। और उस राजा पुरुषके देखते ही तेरे मनमें कोई उमंग उठेगी तथा तू देखते ही उसमें मग्न हो जायेगा।

तू ही वहांकी रीति देखेगा, मेरे कहनेसे क्या है? और उस राजाकी सेवा इतनी ही है कि उसके सन्मुख मग्न रहना, इधर-उधर न होना (उपयोगको सुनिश्चल रखना) फिर वहांसे तू कुछ काल पश्चात् हट जायेगा, तब फिर वैसा ही होना। फिर कुछ काल पश्चात् वहांसे तू छूट जायेगा और फिर उन्हीं पुराने लोगोंके बीच आवेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहां फिर तू उन्हीं लोगोंकी सेवा करेगा, उस सेवासे सुखी-दुखी भी होगा, परन्तु उन लोगोंको तू अब राजाके रूपमें न तो देखेगा न जानेगा। अब उनको उस राजाकी प्रजा ही जानेगा और देखेगा क्योंकि यद्यपि उस काल प्रत्यक्ष राजाको देखता जानता नहीं परन्तु तूने राजाके लक्षण द्वारा राजाकी सूरत ठीक याद कर ली है, राजाकी सूरत याद रहती है अतः अब उन लोगोंको राजा नहीं देखता है, लोगोंको लोगरूप ही देखता है, राजाका भ्रम उत्पन्न नहीं होता।

तथा राजाकी सेवाका जो सुख लिया वैसा सुख अब इन लोगोंकी सेवामें नहीं देखता है। तथा उनकी सेवा करनी बहुत बुरी लगती है, अतः उसे आगे भी बुरी देखा-जाना करेगा। मनमें ऐसा चिंतन करेगा कि इस सेवा संबंधसे मेरे कब विपत्ति नहीं रही? अर्थात् उनसे तो आपत्ति ही रही है। तथा तबसे तू उन लोगोंको राजा संबंधसे देखने-जाननेसे रुक गया। परन्तु उनकी कोई सेवा करनी रह गई है, इस प्रकार तू उन लोगोंमें विचार करना, परन्तु मनमें राजा ही की सेवाकी रुचि रहेगी। तथा फिर उनकी सेवा छोड़कर अब शीघ्रतासे उसी राजाकी सेवा करने लग जाएगा। फिर राजाकी सेवा छूट जाएगी, फिर इन लोगोंकी सेवा करने लग जाएगा। तथा फिर यह सेवा छोड़ेगा, राजाकी सेवा करेगा, इसी प्रकार होते होते कुछ काल पश्चात् उसी राजाकी सेवामें रह जायेगा। सर्व तात्पर्य यह है कि तब तू ही राजा होकर रहेगा। कुछ कालमें उस राजाकी सेवासे तुझे ऐसी राजाकी प्रभुता होगी। तब उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुषने यह कथा सुनकर और उसी प्रकारकी रीति करनेसे वह स्वयं राजा भी बन गया। इति दृष्टान्तः। दार्ष्टान्त इस प्रकार है।

इस जीवके परिणाम हैं वह परिणाम अन्य परभावोंका अवलंबन, सेवा करते हैं। तब उन परभावोंका सेवन करते परिणाम उन परभावोंको निज स्वभावरूप देखते हैं, जानते हैं, सेवा करते हैं तथा उन परको निजस्वरूप रूप प्रतीति करते हैं। इसी इसी प्रकार अनादिसे करते हुए इस जीवके परिणामोंकी अवस्था बहुत काल तक व्यतीत हुई। फिर काल प्राप्त कर भव्यता परिपाक हुई, तब आप ही अथवा अन्य ज्ञात गुरुके उपदेशका कारण प्राप्त किया, उन गुरुने उपदेश दिया—

हे भव्य परिणामों! तुम पर–हीन की सेवा करते हो और हे परिणामों! परकी सेवा करते हुए इन नीच परको तुम उच्च–स्व मानकर देखते हो, जानते हो, और स्वरूपसे याद–ठीक रखते हो, परन्तु हे भव्य परिणामों! यह पर–नीच है, स्व–उच्चत्व नहीं है तथा यह तुम्हारा वस्तु आधार नहीं है। तथा इन नीचोंके सेवनसे तुम भी–पर नीच जैसे ही हो रहे हो, तथा इन पर–नीचोंकी सेवा करते-करते दुःख, उपाधि, दारिद्रय सदा पाते रहे हो। ये तुमको रंचमात्र भी कुछ दे सकते नहीं है। तथा तुम झूठे ही 'ये ही हमको देते हैं' ऐसे मान रहे हो। ये तो पर और नीच हैं परन्तु तुम इनको स्वउच्चत्व मानकर बहुत नीच हो गये हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे भव्य परिणामों! जो कोई स्व उच्चत्व है उसको तुमने न कभी देखा है, न जाना है और न सेवन किया है। अतः तुम उसको याद कैसे रखोगे?

तथा अब उस स्वभावको देखो, जानो और सेवा करो। तब तुमको आप ही याद रहेगा. तो तुम सुखी हो जाओगे, अयाचीक (बिना मांगे) लक्षपति हो जाओगे और अपनी लक्ष्मीसे प्रभु हो जाओगे। इस प्रकार उन भव्य परिणामोंने सुनकर और उन्हें उस निजस्वभावको देखने, जानने, सेवन करनेकी अपूर्व महारुचि उत्पन्न हुई। तथा तब ही उन परिणामोंने उसको पूछा—उस निजस्वभावको किस प्रकार प्राप्त करें, कौनसा स्थान है? वह सब रीति कहो। तब उस ज्ञाता गुरुने यथार्थ मार्ग और स्थान आदि पहचाननेकी यथार्थ जैसीकी तैसी रीतिका कथन किया। तब वह रीति याद रखकर वे परिणाम (अपने) स्वभावको देखने, जानने, सेवन करनेको उद्यमपूर्वक चलते हैं। वही कहते हैं—

पहले तो इन परिणामोंने छह द्रव्योंकी संख्या देखी। पश्चात् एक आकाशद्रव्य अवगाह कारण गुणादि पर्याय लक्षणों द्वारा भिन्न देखा परन्तु उसमें स्वभाव राजाका कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस आकाश द्रव्यको छोड़ आगे धर्मद्रव्य गतिकारण गुण पर्यायादि लक्षणों द्वारा भिन्न देखा। परन्तु उसमें भी स्वभाव राजाका कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस धर्मद्रव्यको भी छोड़कर आगे अधर्मद्रव्य स्थितिकारण गुण पर्यायादि लक्षणों द्वारा भिन्न देखा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु उसमें भी स्वभाव राजाका कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस अधर्म नगरको भी छोड़कर और आगे कालद्रव्य वर्तनाकारण गुण पर्यायादि लक्षणों द्वारा भिन्न देखा। परन्तु उसमें भी स्वभाव राजा कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस कालद्रव्यको भी छोड़कर आगे पुद्गल द्रव्य वर्णादि गुण पर्याय लक्षणों द्वारा भिन्न देखा। परन्तु उसमें भी स्वभाव राजाका कोई लक्षण नहीं देखा। अतः उस पुद्गल द्रव्यको भी छोड़ दिया।

इस प्रकार उन परिणामोंने ये पांच द्रव्य ता देखे परन्तु स्वभाव राजाका नाममात्र भी नहीं देखा अतः इनको छोड़ दिया। आगे ये जीव संज्ञा द्रव्यनगरके समीप आ पहुंचे। वहां इन परिणामोंने कोटरूप नोकर्म स्कंध देखा, वह सर्व निःसंदेह पुद्गल द्रव्यका बना हुआ देखा। उसमें तो स्वभावका कोई भी लक्षण नहीं है। अतः इस नोकर्मको छोड़कर उसके भीतर परिणाम आये। वहां आठ कर्म व नव तत्त्व देखे। कार्माण मण्डली स्कंधकी बस्ती है। उस बस्तीमें देखा तो केवल सर्व पुद्गल द्रव्यकी जाति निवास करती है और उन्हींका परस्पर लेना देना, संबंध सगाई, लड़ाई प्रीति क्रिया होती है। इस प्रकार उस बस्तीमें भी निःसंदेह स्वभावका कोई अंग नहीं देखा। अतः उस कर्मादि पुद्गल जाति बस्तीको छोड़कर ये परिणाम आगे गये। वहां देखा कि जैसे पीछे कर्मादि पुद्गल जातियोंके नाम थे, उन्हीं-उन्हीं जातियोंके नामधारक चेतन परिणाम-भावोंकी बस्ती है परन्तु वे भाव (अशुद्धिरूप भावकर्म)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाति सर्व चेतन परिणामोंकी है अतः वे सर्व चेतन ही चेतन नाम धारक हो रहे हैं, सर्व उस चेतन जैसी भाषाको लिये हुए हैं। ऐसी जीव परिणामभावोंकी जाति देखी। जो सावधान होकर देखें तो इन भावोंमें [तो] स्वभाव नहीं है, वह तो परके अनुरूप भाव है। अतः इन परिणामोंने परभावोंको भी अपनी शक्ति द्वारा पृथक् किये। उनको पृथक् करते ही उन परिणामोंने ज्ञाता-दृष्टादि लक्षणमय चेतनस्वभावको प्रत्यक्ष साक्षात् देखा जाना। उस स्वभावके सन्मुख स्थिरीभूत हुए, वहाँ विश्राम लिया। उन परिणामोंको विश्राम लेने पर अपूर्व सुख उत्पन्न हुआ। स्वभावको प्राप्त हुए, वे परिणाम आकुलतासे शांत हुए; चैनरूप (निराकुल) हुए, बहुत अपूर्व शोभावंत हुए और प्रभुतारूपको उद्यत हुए।

सर्व तात्पर्य यह है—उन परिणामोंकी कथा वचन द्वारा कहां तक कहें? इस प्रकार ये परिणामस्वभावको प्राप्त हुए कुछ काल तक रहे। फिर उस स्वभाव विश्राम सेवासे परिणाम छूट गये, फिर उन्हीं परद्रव्य लोकोंमें आये। उनमें आए परिणाम उन परद्रव्य लोकोंका अवलंबन सेवा तो करते हैं और उस सेवासे सुखी-दुखी भी होते हैं परन्तु वे परिणाम इस प्रकार जानते-देखते हैं कि—हम परद्रव्य ज्ञेय नीचोंका अवलंबन करते हैं ये हमारी सेवाके योग्य नहीं हैं, हमको उस एक चेतनभावकी सेवा शोभा देती है। ये सर्व परद्रव्य एक चेतनस्वभावराजाकी ज्ञेय दृश्य प्रजा है। अतः ये परिणाम अब इन परद्रव्य ज्ञेय प्रजाको ज्ञाता-दृष्टा लक्षणमय चेतनस्वभाव राजारूप वहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखते हैं, नहीं जानते हैं। इन परद्रव्योंको अब निःसंदेह उस चेतनराजाकी केवल ज्ञेय प्रजारूप जानते हैं।

तथा अब ये परिणाम इस परद्रव्यका ही अवलंबन करते हैं, परन्तु इन परिणामोंने उस चेतनस्वभावकी ज्ञाता-दृष्टा लक्षणमय मूर्तिकी प्रत्यक्ष शक्तिरूपसे आस्तिक्यता प्रत्यक्ष शक्तिरूपसे ठीकता अथवा शक्तिरूपसे याद कर रखी है। इन परिणामोंको यद्यपि इस वर्तमान कालमें चेतनस्वभाव-को अनुभवरूप प्रत्यक्ष देखते, जानते और सेवा नहीं करते; ये परिणाम इस कालमें उन परद्रव्य ज्ञेय प्रजाको देखते, जानते और सेवा करते हैं परन्तु उन परिणामोंको सदा उस चेतनस्वभावकी ज्ञाता-दृष्टामय मूर्ति शक्तिरूपसे साक्षात् तद्रूप याद रहती है।

जैसे किसी पुरुषने कोई ग्रन्थ याद कर रखा है और अब वर्तमानकालमें उस ग्रन्थपाठको देखता, जानता, रटता और पढ़ता नहीं है; या तो सोता है, या खेलता है, या प्रमादी हुआ है, या अन्य ग्रन्थ रटता है, पढ़ता है या खानपान, गमन, हसना, स्नान, दान आदि क्रिया करता है। कोई जानेगा कि इस पुरुषने बहुत ग्रंथ याद किये हैं, वह ग्रन्थ इस कालमें इस पुरुषके ज्ञानमें नहीं है, इस पुरुषसे सर्वथा नास्ति हो गये हैं। हे भाई! इस प्रकार तो नहीं है। यह पुरुष अन्य दान आदि क्रियाको करता, प्रवर्तता और अभ्यास करता है परन्तु वह ग्रन्थकी धारणा शक्तिरूपसे, ठीक प्रकारसे विद्यमान है और उसके जाननेमें है। वह ग्रन्थकी धारणा उस पुरुषके कभी भी नास्ति नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती। फिर जब उस ग्रन्थको पढ़ता है, तब उस ग्रन्थकी धारणाशक्तिसे भले प्रकार पढ़ता है, उस पढ़नेका सुख लेता है और उस ग्रन्थकी याद शक्ति इस प्रकार है कि अन्य ग्रन्थके पाठ पढ़नेमें नहीं मिला देता है। यह उस ग्रन्थकी याद शक्तिका गुण है।

इस प्रकार इन परिणामोंसे चेतनस्वभावराजाकी ज्ञाता-दृष्टादि लक्षणमय मूर्तिके ठीक यादरूप परिणाम प्रवर्तते हैं अतः उन परिणामोंको चेतनस्वभाव याद है। तथा ये परिणाम उन परद्रव्य ज्ञेयोंको देखते जानते हुए भी उस चेतनस्वभाव ज्ञाता-दृष्टामय सूरतको नहीं मिला देते, स्वभावको भिन्न रखते हैं। यह उस स्वभावकी ठीक याद-रूप परिणामके प्रवर्तनका गुण है। ये परिणाम अन्य पर-द्रव्य भावोंका अवलंबन (सेवा) करनी छोड़ फिर कुछ काल पश्चात् उस चेतनस्वभावकी स्थिरता, विश्राम, सेवारूप सन्मुख होते हैं। उस सेवासे वही सुख-शांति, अनाकुलता आदि रीति होती है। फिर कुछ काल पश्चात् उस चेतन-स्वभावकी सेवा छूट जाती है तब वे परिणाम फिर उन ज्ञेयोंकी सेवा करते हैं। इसी इसी प्रकार कभी स्वभावकी सेवा करते, कभी परभावोंकी सेवा करते बहुत काल व्यतीत हुआ।

तब कुछ काल पश्चात् ये परिणाम जो उस चेतन-स्वभावमें विश्राम सेवामें लगे थे, वे तो लगे ही रहे परन्तु जो अन्य परिणाम अबुद्धि कर्मरूप भावमय परिणाम थे, वे परिणाम भी आगत समय समयमें अबुद्धि कर्मरूपसे दूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो-होकर उस स्वभावरूपमें विश्राम सेवामें लगने लगे। इसी प्रकार होते होते जब इस जीवद्रव्यके सब चारित्र-परिणाम स्वभावरूप विश्राम स्थिरता रूप हुए, ज्ञान-दर्शनादि सर्व परिणाम एक केवल निजस्वरूप रूप हुए, यहाँ तात्पर्य यह है कि—यह सर्व परिणाम सर्वथा स्वभाव-रूपक, कूटस्थ सिद्ध हो गये। तभी इस स्वभावराजाकी प्रत्यक्ष जानने-देखनेकी दोनों शक्तियाँ सर्व ज्ञेय लोकालोक प्रजा पर प्रवृर्त गई। अनंत बल—वीर्य, अनंत परम सुख समूहवंत हुए, परम प्रभु हुए। उसकी अवस्था कथनातीत है अतः इतना जानना कि ये परिणाम तब परिणामस्वरूप ऋद्धि, प्रभु, नित्यपदको प्राप्त हुए।

हे संत! इस कथनमें एक तो बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा इन परिणामोंकी अवस्था जाननी और दूसरे अंतरात्माकी अवस्थामें ज्ञान-दर्शन-सम्यक्त्वाचरण, चारित्रा-चरणकी रीति कही है। अपने परिणामसे तुलना करके देखनेके लिये यह उपदेश दिया है।

इति दृष्टांत पूर्वक स्वरूप व्याख्यान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ छद्मस्थिवां परमात्मप्राप्ते (परमात्मप्राप्तेः) सकला रीतिः एतावन् एकांतेन अस्ति।

अब छद्मस्थियोंकी परमात्म प्राप्तिकी सकल रीति एकांतसे इतनी है—

(दानका लक्षण)

जीवद्रव्य निजस्वभावभावशक्तिरूपं, अव्यक्तत्वत् निज-स्वभावभावव्यक्तत्वेन यदा स्वपरिणामेभ्यः ददाति तद्दानम् ॥ १ ॥

अर्थ—निजस्वभाव भावशक्तिरूप ही जीवद्रव्य है। अव्यक्त जो निजस्वभाव भाव उसके अभिव्यक्त हो जाने पर जिस समय अपने रूप परिणमन करता है वही दान है।

(शीलका लक्षण)

शीलो निजचेतनस्वभावः तस्य निजस्वभावस्य, अन्य परभाव रीतिनारीभ्यः यत् विरतिः, अतिष्ठनं, पालनं तदेव शीलपालनं ॥ २ ॥

अर्थ—अपने चेतनस्वभावको शील कहते हैं। उस अपने स्वभावकी अन्य परभावरूप नारीसे विरक्तता (त्याग) और अपने स्वभावमें स्थिर रहना ही शील पालन कहलाता है।

(तपका लक्षण)

यत् देह परिग्रह भोग परिवार इष्ट मित्र शत्रु परज्ञेयस्य त्यजनं–ममतारूप रहितत्वं, वा तृष्णा तस्याः तृष्णाया रहितं भावशोभनं तपनं तदेव तपः ॥ ३ ॥

अर्थ—शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्ट, मित्र, शत्रुरूप परज्ञेयोंको छोड़ना अर्थात् उनमें ममता रहित परिणति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होना तथा उनमें तृष्णा रहित होना और अपने स्वभावमें शोभित स्थिरता होना ऐसी तपस्या ही तप है।

(भावनाका लक्षण)

यत् निजस्वभावस्य अनुभावनं तदेव (सर्व) भावना ॥ ४ ॥

अर्थ—अपने स्वभावका बारंबार चिन्तन करना ही भावना है।

(व्रतका लक्षण)

यत् इन्द्रियमनभोगादिभ्यः संवरणं परिणामानां तत् व्रतम् ॥ ५ ॥

अर्थ—इन्द्रिय, मन और भोगादिकोंकी तरफ जानेसे अपने परिणामोंका रुकना व्रत है।

(दयाका लक्षण)

यत् निजस्वस्वभावं विकारभावेन न घातयति न हिनस्ति, निजस्वभावं पालयति तदेव (सैवे) दया ॥ ६ ॥

अर्थ—विकारमय परिणामों द्वारा अपने निजस्वभावका घात नहीं करना तथा अपने स्वभावका पालन करना ही दया है।

(यति और श्रावकका लक्षण)

सर्व इन्द्रियभोगेभ्यः देहादिपरिग्रह ममत्वत्यजनंतत् (स) यतिः। किंचित् त्यजनं श्रावकः ॥ ७ ॥

अर्थ—समस्त इन्द्रियोंके भोगोंसे और शरीरादि परिग्रहसे सर्वथा ममता रहित होना यतिका लक्षण है। इनमें एकदेश ममत्वका त्याग होना श्रावकका लक्षण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(वैराग्यका लक्षण)

रागद्वेषखेदरहितं उदासीनभाव ज्ञानसहितं तत् वैराग्यम् ॥८॥

अर्थ—राग, द्वेष, खेद रहित ज्ञानसहित उदासीनभाव होना वैराग्य है।

(धर्मका लक्षण)

निजवस्तुस्वभावो धर्मः तदेव (स एव) धर्म्मः ॥ ९ ॥

अर्थ—वस्तुका निजस्वभाव ही धर्म है। अतः उसही को धर्म कहते हैं।

(शुद्धका लक्षण)

रागादिविकाररहितो शुद्धः ॥ १० ॥ इत्यादि निश्चयाः चेतनजा ॥

अर्थ—रागादि विकार रहित ही शुद्धका लक्षण है। इत्यादिको चेतनजन्य विश्चय करना।

इति छद्मस्थीकी परमात्मलाभकी सकल रीति इतनी

अथ जीवभाव वचनिका

[लब्धि और उपयोगरूप मति-श्रुतज्ञानको भावेन्द्रिय कहा है जो क्षायोपशमिकज्ञान है]

क्षयोपशममें पांच इन्द्रिय पुद्गलके जो आकार बने हैं, उन आकार स्थानोंमें जीवके जो-जो क्षायोपशमिक चेतन परिणाम किस भाँति प्रवर्तित होता है—कि जैसी-जैसी पुद्गलकी इन्द्रियाँ नाम धारण करती हैं तैसे ही इन्द्रियोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आश्रय कर उद्यत होकर प्रवर्तते हैं, तीन-तीन चेतनके परिणाम भी वैसे-वैसे पुद्गलके एक-एक गुण स्कंधोंको देखते जानते हैं। और उन मार्गों द्वारा वैसे ही सुख-दुःखको वेदन करते हैं अतः उन चेतनपरिणामोंको इन्द्रियसंज्ञा प्राप्त होती है।

सर्व तात्पर्य यह है कि—पुद्गल इन्द्रिय मार्गके आश्रयसे प्रवर्तते हुए परिणाम इन्द्रिय संज्ञाको प्राप्त होते हैं। तथा इसी प्रकार परिणामोंको मनसंज्ञा प्राप्त हुई जानना। इस प्रकार इन परिणामभावोंको तो इन्द्रियसंज्ञा कही। अब किस किसको अतीन्द्रिय संज्ञा है? वह कहते हैं—

जो जीवके परिणाम क्षयोपशमादि बिना एक आवरण-सहित भावरूप प्रवर्तते हैं उन परिणामोंको अबुद्धि संज्ञा है। उन अबुद्धि संज्ञक परिणामोंको अतीन्द्रिय संज्ञा भी कही जाती है। तथा जब जिस कालमें सम्यग्दृष्टिके सम्यक्मति-श्रुति परिणाम; इन्द्रिय-मनभावसे रहित हो स्वरूप अनुभव रूप होते हैं तब तक वे परिणाम भी अनुभव अतीन्द्रिय संज्ञाको प्राप्त होते हैं। तथा जब केवलज्ञान दर्शनादिरूप जीव होता है तबसे जीवके केवलरूप परिणाम भी अतीन्द्रिय कहे जाते हैं। इसी प्रकार अतीन्द्रिय संज्ञक परिणामोंको यथास्थान जान लेना।

तथा जो किंचित् किंचित् वस्तुओंके लक्षण साधन करे, वे ज्ञान-दर्शनभाव परोक्ष कहलाते हैं।

तथा प्रत्यक्षके चार भेद हैं—जब यह संसारी जीव सुख-दुःख बुद्धि पूर्वक भोगता है, तब बुद्धि पूर्वक उपयोग उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोगको प्रगट जानता–देखता है, उसको सुख–दुःख वेदन कहा जाता है। तथा जब मति, श्रुतस्वरूपके अनुभव रूप होते हैं तब उस समय "यह मैं चेतन व्याप्य–व्यापक वस्तु" इस प्रकार प्रत्यक्ष, प्रगट जाननें देखनेरूप मति श्रुति उपयोग-भाव है, वह अनुभव निःसन्देह प्रत्यक्ष है, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है। तथा केवलज्ञान, केवलदर्शनादि होने पर उस केवलज्ञान-दर्शनको सकल प्रत्यक्ष कहा जाता है। तथा अवधि मनःपर्यय-ज्ञान किंचित् किंचित् ज्ञेयोको प्रगट जानते देखते हैं उन्हें देशप्रत्यक्ष कहा जाता है। चारित्रप्रत्यक्ष यथास्थान जानने।

[अथ छद्मस्थिनां परमात्मप्राप्तेः सफलारीतिः एतावन् एकांतेव अस्ति]

हे छद्मस्थ! यहाँ एक तात्पर्यकी बात सुनो—उस बातके करनेपर बहुत लाभ अपने आप सिद्ध होता है। तेरे लिये कार्यकारी (सुधारनेवाली) बात इतनी ही है, अब वह क्या?

प्रथम दृष्टांत—जैसे शीशा और उज्वलताका एक तादात्म्य व्याप्य-व्यापक है—एक व्याप्य-व्यापक ही है। वह शीशा निर्मल स्वच्छताका मात्र एक पिंड बना हुआ है। उस पिंड बननेमें अन्य कुछ भी मिला हुआ नहीं है, एक मात्र स्वच्छताका पिंड शीशा बना है। वह तो तादात्म्य व्याप्य-व्यापक अंग है तथा वह उसकी पैनी–अत्यंत उज्वल स्वच्छता प्रतिबिंबाकाररूप होती है वह व्याप्यव्यापक अंग जानना अतः शीशेको तादात्म्य व्याप्यव्यापक अंगसे देखनेपर एक स्वच्छताका ही पिंड है, उसकी अपेक्षासे उसमें अन्य कुछ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी नहीं है और उस स्वच्छताका भाव जैसे है वैसा होता है। इति।

उसीप्रकार चेतव परिणाम! तुम देखो, तादात्म्य व्याप्यव्यापकरूपसे तो शुद्ध एकमात्र चेतना वस्तुहीका पिंड बना हुआ है; उस पिंड बननेमें तो अन्य शुद्ध अशुद्ध, संसार-मुक्ति, भेद–अभेद, निश्चय-व्यवहार, नय, निक्षेपादि, ज्ञेयाकार प्रतिभासादि समस्त भावोंका रंचमात्र कुछ भी भाव नहीं मिला है; अनादिसे शुद्ध चेतनवस्तु पिंड बना है। तथा उन चेतन परिणामरूपोंमें तुम शुद्ध-अशुद्ध, संसार-मुक्ति, भेद-अभेद, निश्चय-व्यवहारादि, ज्ञेयाकार प्रतिभासादि-भाव सबहीके रूप होते हो, व्याप्यव्यापकरूप हुए हो। यदि तुम इसीप्रकार तादात्म्य व्याप्यव्यापकरूप होते तो—

हे छद्मस्थ' परिणामों! जो परिणाम व्याप्यव्यापक भावमें अभ्यासरूप प्रवर्तन करोगे तो यद्यपि तुम एक वस्तु, वस्तुकारूप हो तथापि छद्मस्थ परिणामों! तुम विकल्प-जालमें पड़ जाओगें, तब तुम उनमें क्लेश पाओगे। तुम्हारी शक्ति इतनी तो है नहीं कि उस विकल्पजालको संपूर्ण प्रत्यक्ष साध सको अतः इससे तुम्हारा परमात्म लाभ कार्य साधन नहीं होगा। तुमको अपना परमात्म कार्य साधनेकी इच्छा है, अतः तुम इसरूप इतना ही प्रवर्तना, अनुभव करो साधन करो कि इस 'अपने तादात्म्यरूपको प्रत्यक्ष देखो, जानो और स्थिर रहो। इतनी ही रीति तुम्हें परमात्मरूप होनेको कार्यकारी है। अन्य कोई विकल्प-जाल कार्यकारी नहीं हैं। छद्मस्थ परिणामों! यह निःशंक (निर्भय) होकर जानना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः तुम इस प्रकारसे उद्यमवंत रहना। तुम परमात्मलाभको सकल रीति निःसंदेह यही जानना।

[इति छद्‌मस्थीकी परमात्मलाभकी सकल रीति इतनी]

[इति जीवभाव वचनिका संपूर्णम्]

अथ आत्मवलोकन स्तोत्र

गुणगुणकी सुभाव विभावता, लखियो दृष्टि निहार।
पै आन आनमै न मेलियौ, होसी ज्ञान विथार ॥ १ ॥

अर्थ—प्रत्येक गुणका स्वभाव और विभाव दृष्टि प्रसार कर देखता, परन्तु अन्यको अन्यमें न मिलाना, तुम्हारा ज्ञान निर्मल विस्तृत होगा।

सब रहस्य या ग्रन्थको, निरखो चित्त देय मित।
चरनस्यौं जिय मलिन होय, चरनस्यौं पवित्त ॥ २ ॥

अर्थ—हे मित्र! इस ग्रन्थका रहस्य चित्त लगाकर समझना। जीव आचरणचारित्रसे ही मलिन होता है और आचरणचारित्रसे ही पवित्र होता है।

चरन उलटैं प्रभु समल, सुलटै चरन सब निर्मल होति।
उलट चरन संसार है, सुलट परम की ज्योति ॥ ३ ॥

अर्थ—चारित्र उलटा (मिथ्या) होनेसे प्रभु (जीव) मलिन होता है, चारित्र सुलटा—सम्यक् होनेसे सब निर्मल हो जाते हैं। मिथ्याचारित्र संसार है और सम्यक्चारित्र परमज्योति अर्थात् मोक्ष है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तु सिद्ध ज्यौं चरन सिद्ध है, चरन सिद्धिसो वस्तुकी सिद्धि।
समल चरण तब रंकसा, चरन शुद्ध अनंती ऋद्धि ॥ ४ ॥

अर्थ—वस्तुकी सिद्धिसे चारित्र सिद्ध है, चारित्रकी सिद्धिसे वस्तुकी सिद्धि है [वस्तुके आश्रयसे ही चारित्र परिणाम होता है, और चारित्रपरिणाम बिना वस्तुका स्वाद नहीं आता], जब मलिन चारित्र है, तब रंकवत है और चारित्र शुद्ध होने पर अनंत ऋद्धि वाला है।

इन चरन परके वसि कियौ, जियको संसार ।
भी निज घर तिष्ठ कर, करै जगत स्यौं पार ॥ ५ ॥

अर्थ—परवश आचरणसे जीवको संसार होता है फिर निजघरमें स्थित होकर जगतसे पार होता है।

व्यापकको निश्चय कहौ, अव्यापककौ व्यवहार ।
व्याप अव्यापकके फेरस्यौ, भया एक, द्वय प्रकार ॥ १ ॥

अर्थ—व्यापकको निश्चय कहते हैं और अव्यापकको व्यवहार कहते हैं। व्यापक-अव्यापकके भेदसे एक दो प्रकार हो जाता है।

स्वप्रकास निश्चय कहा, पर प्रकाशक व्यवहार ।
सो व्यापक अव्यापक भावस्यौ, तातैं वानी अगम अपार ॥ २ ॥

अर्थ—स्वप्रकाशकको निश्चय कहते हैं और परप्रकाशक-को व्यवहार कहते हैं, वह व्यापक, अव्यापक भावके भेदसे कहते हैं। अतः जिनवाणी अगम और अपार है।

क्षणमें देखो अपनी व्यापकता, इस जिय थलस्यौं सदीव ।
तातैं भिन्न हूं लोकतै, रहूं सहज सुकीव ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—एक दृष्टिसे देखने पर जीव निजस्थानसे त्रिकाल व्यापक है। अतः मैं लोकसे भले प्रकार भिन्न सहज भावसे रहता हूं ॥ ३ ॥

छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि जीवका ज्ञान, दर्शनादि, इन्द्रियमन सहित और इन्द्रियमन अतीतका किंचित् विवरण—

दोहा

बुद्धि अबुद्धि करि दुधा, बढ़ै छदमस्तो धार।
इनकौ नास परमात्म हुवन, भव जल समुद्रके पार ॥ १ ॥

अर्थ—छद्मस्थ जीवमें बुद्धि—अबुद्धि दो प्रकारसे परिणामोंकी धारा प्रवाहित होती है। भवजल समुद्रके पार परमात्मा होनेके लिये इनको नष्ट कर।

सोरठा

जे अबुद्धिरूप परिनाम, ते देखै जानै नहीं।
तिनकौं सर्व साबरन काम, कैसे देखै जानै बापु रे ॥ २ ॥

अर्थ—जो अबुद्धिरूप परिणाम हैं, वे देखते-जानते नहीं हैं। उनका सर्व कार्य आवरण सहित होनेसे स्वयं कैसे देख जान सकते हैं ?

पुनः

जु बुद्धरूपी धार, सो जथा जोग जानै देखै सदा।
ते क्षयोपशम आकार, तातैं देखै जानै आप ही ॥ ३ ॥

अर्थ—बुद्धिरूपी धारा सदा यथायोग्य जानती-देखती है। वह धारा क्षयोपशम आकाररूप होनेसे स्वयं ही देखती-जानती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुनः

बुद्धि परनति षट्भेद, भए एक जीव परनामके ।
फरस, रस, घ्राणेव, श्रोव, चक्षु, मन छठमा ॥ ४ ॥

अर्थ—एक जीव परिणामकी बुद्धि परिणतिके छह भेद । स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, और मन ।

दोहा

भिन्न-भिन्न ज्ञेयहि उपर, भए भिन्न थानके ईश ।
तातैं इनको इन्द्र पद, धरचौ वीर जगदीस ॥ ५ ॥

(उपयोगके पांच इन्द्रिय भेद) भिन्न भिन्न ज्ञेयों पर भिन्न-भिन्न स्थान (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द)के ईश हुए [जानते हैं अतः ईश कहलाते हैं], अतएव तीन लोकके ईश वीर जिनेन्द्रने इनको इन्द्रपद नाम दिया ।

पुनः

ज्ञेयहि लक्षन भेदकौ, मानइ चितइ जो ज्ञान ।
ताकौं मन चित संज्ञा धरी, लखियो चतुर सुजान ॥ ६ ॥

अर्थ—जो ज्ञान, लक्षण भेदरूपसे ज्ञेयोंका मनन, चिंतन करता है, उसको मन अथवा चित्त संज्ञा दी गई । हे चतुर ज्ञानी पुरुषों देखो ।

पुनः

ज्ञान दर्दन धारा, मन इन्द्री पद इम होत ।
भी इन नाम उपचारसे, कहे देह अंगके गोत ॥ ७ ॥

अर्थ—ज्ञान दर्शनधाराको इस प्रकार मन इन्द्रय पद प्राप्त हुआ । फिर देहके अंगोंको ये ही नाम उपचारसे कहे गये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुनः

यहु बुद्धि मिथ्याती जीवकै, होई क्षयोपशमरूप ।
पै स्वपर भेद लखै नहीं, तातैं निज रवि देखन धूप ।। ८ ।।

अर्थ—मिथ्यात्वी जीवके यह बुद्धि क्षयोपशमरूप होत है परन्तु स्वपरका भेद नहीं देखती है अतः निज ज्ञानसूर्य और उसके प्रकाशको नहीं देख पाता ।

पुनः

सम्यग्दृष्टि जीवके, बुध धार सम्यग् सदीव ।
स्वपर जानै भेदस्यौं रहे, भिन्न ज्ञायक सुकीव ।। ९ ।।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि जीवकी बुद्धि धारा सदा ही सम्यक् होती है। स्वपर भेद जाननेंसे भले प्रकार भिन्न ज्ञायक ही रहता है।

चौपाई

मन इन्द्री तब ही लौं भाव, भिन्न-भिन्न साधै ज्ञेयकौं ठाव ।
सब मिलि साधै जब इकरूप, तब पच इंद्रीका नहीं रूप ।। १० ।।

अर्थ—जब तक (उपयोगके भेद) भिन्न भिन्न ज्ञेय-स्थानका साधन करते हैं, तब तक ही मन इन्द्रिय भाव है जब सर्व उपयोग एक स्वरूपका साधन करता है तब उसका मन–इन्द्रियरूप नहीं रहता ।

इक पद साधनकौं किय मेल, तब मन इंद्रीका नहीं खेल ।।
तातैं मन इन्द्री भेद पद नाम, है अतीन्द्री एकमेक परवास ।।

अर्थ—एक (स्व) पद साधनेको जब उपयोगके भेद मिल गये (उपयोग सर्व ओरसे हटकर एकरूप अभेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ) तब मन इन्द्रियका खेल–नाटक नष्ट हो गया। अतः मन इन्द्रिय उपयोगके भेदके नाम हैं। अतीन्द्रिय परिणाम तो एक अभेद परिणाम है।

स्व अनुभव छन विषैं, मिलै सब बुद्धि परनाम।
तातैं स्व अनुभव अतींद्री, भयौ छद्मस्तीको नाम ॥ १२ ॥

अर्थ–स्व अनुभव क्षणमें सब बुद्धि परिणाम मिलकर प्रवर्तते हैं अतः स्व अनुभवका नाम छद्मस्थके अतीन्द्रिय कहलाता है।

जा विधितें मन इन्द्रिय होत, ता विधिस्यौं भए अभाव।
तब तिन ही परनाम कौ, मन इन्द्री पद कहा बताव ॥ १३ ॥

अर्थ–मन और इन्द्रिय इस विधिसे (उपयोग भेदसे) होते हैं और उस विधिसे (अभेद उपयोगसे) भेद, अभाव हुए, तब उन परिणामोंको मन इन्द्रिय पद कैसा ?

सम्यग् बुद्धि परवाह, क्षणरूप मझ क्षन रूप तट।
पैं रूप छांडि न जाह, यहु सम्यक्त्वताकी माहातमा ॥१४॥ इति

अर्थ–सम्यक्ज्ञान प्रवाहका क्षणरूप मध्य (निर्विकल्प) होता है और क्षणरूप तट (सविकल्प) होता है परन्तु रूप छोड़कर नहीं जाता, यह सम्यक्त्वका माहात्म्य है।

अनुभव दोहा—

हूँ चेतन हूँ ज्ञान, हूँ दर्शन सुख भोगता।
हूँ अहन्त सिद्ध महान, हूँ हूँ ही हूँ को पोषता ॥ १ ॥

अर्थ–मैं चेतन हूँ, मैं ज्ञान हूँ, मैं दर्शन हूँ, मैं सुखका भोक्ता हूँ, मैं अर्हन्त-सिद्ध महान हूँ, मैं मैंही का पोषक हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे फटिकके बिंबमें, रह्यो समाय जोतिको खंध ।
पृथक् मूर्ति प्रकाशकी, बंधी प्रत्यक्ष फटिकके मंध ।। २ ।।

अर्थ—जैसे स्फटिकके बिंबमें दीप ज्योतिका स्कंध समा रहा है परन्तु स्फटिकमें प्रकाशकी प्रत्यक्ष भिन्न मूर्ति है।

तैंसे यह कर्म स्कंधमें समाय रहा हूं चेतन दर्व ।
पै पृथक् मूर्ति चेतनमई, बंधी त्रिकालगत सर्व ।। ३ ।।

अर्थ—उसी प्रकार इस कर्म स्कंधमें मैं चेतन द्रव्य समा रहा हूं परन्तु तीनोंकाल सर्वज्ञ स्वभावी चेतनमयी मूर्ति पृथक् रहती है।

नख सिख तक इस देहमें निवसत हूं मैं चेतनरूप ।
जिस क्षण हूं हूं ही कौं लखूं, ता क्षण मैं हौं चेतनभूप ।।

अर्थ—नखसे लेकर शिखा तक इस शरीरमें मैं चेतनरूप पुरुष निवास करता हूं। जिस क्षण मैं मुझको ही देखता हूं उसीक्षण मैं चैतन्यराजा हूं।

इस ही पुद्गल पिन्डमैं, वहै जो देखन जानन धार ।
यह मैं यह मैं मैं यह जो कुछ देखन जानन हार ।। ५ ।।

अर्थ—इस ही पुद्गल पिंडमें वह जो देखने जाननेंवाला है, वह देखने जाननेवाला जो कुछ है वही मैं हूं, वही मैं हूं।

यह मैं, यह मैं, मैं यही, घट बीच देखत जानत भाव ।
सही मैं सही मैं मैं सही, यह देखन जानन ठाव ।। ६ ।।

अर्थ—अंतरमें जो देखने-जाननेवाला भाव है, यही मैं हूं, यही मैं हूं, मैं ही हूं। यह दर्शक-ज्ञायक स्थान (पिंड) निश्चित् ही मैं हूं, निश्चित् ही मैं हूं, निश्चित् ही मैं हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ चारित्र—

हूं तिष्ठ रह्यो हूं ही विषै, जब इन परसे कैसा मेल ।
राजा उठि अंदर गयो, तब इस सभासे कैसो खेल ।। ७ ।।

अर्थ—मैं मुझमें ही ठहरा हूँ, तब इस परसे मेरा संबंध कैसा ? जब राजा उठकर अंदर गया, तब सभाका नाटककैसा ?

प्रभुता निजघर रहे. दु:ख नीचता परके गेह ।
यह प्रत्यक्ष रीति विचारिकै, रहिये निज चेतन गेह ।। ८ ।।

अर्थ—अपनें घरमें प्रभुता रहती है और परके घर दु:ख और नीचता रहती रहती है। यह प्रत्यक्ष रीति विचार कर निजचेतन गृहमें रहना चाहिये।

पर अवलंबन दु:ख है, स्व अवलंबन सुखरूप ।
यह प्रगट लखाव पहचानके, अवलंबियो सुख कूप ।। ९ ।।

अर्थ—पर अवलंबन दु:खरूप है और स्व अवलंबन सुखरूप है। यह प्रगट देखकर और लक्षणसे पहिचानकर सुख कूप (स्रोत) का अवलंबन करना चाहिये।

यावत तृष्णारूप है, तावत मिथ्या-भ्रम-जाल ।
ऐसी रीति पिछानिकै, लहियै सम्यग् विरति चाल ।। १० ।।

अर्थ—जब तक तृष्णारूप है तब तक मिथ्या भ्रमजाल है। ऐसी रीति पहचानकर सम्यक् विरति ग्रहण करना चाहिये।

परके परिचय धूम है, निज परिचय सुख चैन ।
यह परमारथ जिन कह्यौ, उस हितकी करी जु सैन ।। ११ ।।

अर्थ—परके परिचयसे आकुलता है और निजके परिचयसे सुख-चैन (शान्ति) है। जिनेन्द्रदेवने यह परमार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कह कर उस हितका संकेत किया है।

इस धातुमयी पिंडमयी रहूं हूं अमूरति चेतन बिम्ब ।
ताके देखत सेवतैं रहे पंचपद प्रतिबिम्ब ।। १२ ।।

अर्थ—इस धातुमयी पिंडमें मैं अमूर्त्तिक चेतन बिम्ब रहता हूं। उसके देखने और सेवन करनेमें पाचों परमपद प्रतिबिंबित होते हैं।

तब लग पंचपद सेवना, जब लग निजपदकी नहीं सेव ।
भई निजपदकी सेवना, तब आपै आप पंच पद देव ।। १३ ।।

अर्थ—तब तक पंचपरमेष्ठीकी सेवा करता है जब तक निजपदको सेवा नहीं है। निजपदकी सेवा होते ही स्वयं पंचपरमेष्ठी देव है।

पंच पद विचारत ध्यावतैं, निजपदकी शुद्धि होत ।
निजपद शुद्धि होवतैं निजपद भवजल तारण पोत ।। १४ ।।

अर्थ पांच पदोंको विचारने और ध्यान करने पर निजपदकी शुद्धि होती है। निजपदकी शुद्धि होने पर निज-पद भव जलसे पार होनेके लिये जहाज है।

हूं ज्ञाता दृष्टा सदा, हूं पंचपद त्रिभुवन सार ।
हूं ब्रह्म ईश जगदीशपद, सो हूं के परचैं हूं पार ।। १५ ।।

अर्थ—मैं सदा ज्ञाता हूं, दृष्टा मैं तीनलोकमें सार पंचपद (परमेष्ठी) हूं। मैं ब्रह्मा ईश्वर और जगदीश स्वरूप हूं। सोहंका परिचय होते ही भवोदधिसे पार होता है।

इति श्री आत्मावलोकन ग्रंथ संपूर्णम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—: शुद्धिपत्र :—

पृ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१	है;	है
,,	२	होता,	होता
,,	,,	भेवद्वारा	नष्ट करके
५	३	जड	जड-
,,	१६	गृणा	गुंण
३३	अंतिम	म्बन्ध सहोनें	सम्बन्ध होने
४०	,,	व्याव्य	व्याप्य
४६	,,	सम्बन्म	सम्बन्ध
५४	७	सवर	संवर
६८	१८	सम्यग्भा	(२५) सम्यग्भा
७१	२	चेतना	अनादिसे चेतना
७३	३	उसो	उसी
,,	११	सम्यत्व	सम्यक्त्व
८४	७	सज्ञा	संज्ञा
८६	१	इन्द्रिय	कायइन्द्रियके
८७	२	समान	सामान्य
८८	४	ठहकर	ठहरकर
९७	६	जोवी	जीवों
९८	९	अश	अंश
११२	११	उद्यम करेगा	उद्यत होगा (उद्यम करेगा)
१२३	२२	किया	विकथा
१४२	१४	(सेवे)	(सेव)
१५०	२०	वदंन	दंसन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५४८

श्री ब्र. दुलीचन्द जैन ग्रन्थमालाके

प्रकाशन

१. अध्यात्मवाणी		१ = ००
२. अमृतवाणी		१ = ००
३. हितकी बात		अप्राप्य
४. आत्मसिद्धि शास्त्र		,,
५. समयसार पद्यानुवाद	(तृतीयावृत्ति)	प्रेसमें
६. नियमसार	(,, ,,)	,,
७. छहढाला (मूलमात्र)	(,, ,,)	० = ३०
८. जैनसिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला	(भाग-१)	१ = ५०
९. मोक्षशास्त्र		(अप्राप्य)
१०. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय		,,
११. प्रवचनसार परमागम		,,
१२. आत्मावलोकन		३ = ००
१३. स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा		४ = ५०
१४. अलिंगग्रहण		१ = ६०
१५. शब्दकोष		० = ६५
१६. समाधितंत्र		(प्रेसमें)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi